Con. 3. IX.33.49
320

अंक 9
संख्या 33

सत्यमेव जयते

मंगलवार
13 सितम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[नवीन भाग 14-क (भाषा) पर विचार किया गया] ..... 2113–2218]

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 13 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—(जारी)

नवीन भाग 14-क (भाषा)—(जारी)

***अध्यक्षः** दो या तीन संशोधन और हैं जिन्हें मैं आधारभूत समझता हूं। एक संस्कृत भाषा के संबंध में, किन्तु मुझे पंडित मैत्र यहां नहीं दिखाई देते। दूसरा संशोधन श्री शंकर राव देव के नाम से है, जिसका आशय यह है कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् अंग्रेजी भाषा के पक्ष में सभी रक्षण स्वतः समाप्त हो जाने चाहिये। इसे भी मैं एक आधारभूत संशोधन समझता हूं। इसके अतिरिक्त एक संशोधन और है, जिसकी सूचना डॉ. सुब्बारायन ने दी थी। वह रोमन लिपि के संबंध में है। पहले मैं इनके प्रस्तावकों को बुलाऊंगा और उसके पश्चात् सामान्य बहस होगी।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): संशोधन संख्या 240 की सूचना मैंने दी है।

***अध्यक्षः** तब आइये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): एक संशोधन मेरे नाम से भी है।

***अध्यक्षः** संशोधन सभी के नाम से हैं किन्तु मैंने कहा था "आधारभूत संशोधन"।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** अध्यक्ष महोदय, हिन्दी के देश की राज-भाषा हो जाने से मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को नहीं हो सकती। मैं सभा को स्मरण कराना चाहता हूं कि मैं जब इस सभा में पहले दिन बोला था तो मैं हिन्दी में ही बोला था। उस समय उस पर आपत्ति की गई थी और यह कहा गया था कि मैं जिस भाषा को देश की राष्ट्र-भाषा कह रहा हूं उसमें न बोलूं मैंने इस आशय के एक संशोधन को उपस्थित करने का प्रयास किया था कि प्रक्रिया समिति सभी नियमों को हिन्दी भाषा में बनाये और उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर दिया जाये। मैंने यह कहा था कि हिन्दी के संस्करण को ही प्रामाणिक संस्करण

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

समझा जाये और यदि निर्वचन के संबंध में कोई विवाद हो तो हिन्दी के संस्करण को ही प्रमाण माना जाये। उस दिन यद्यपि स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय ने मेरी बातों को अनियमित घोषित करने का प्रयास किया था किन्तु मैंने यह मांग की थी कि संविधान सभा का सदस्य होने के नाते, तथा इस देश की एक सन्तान होने के नाते मुझे उस भाषा में बोलने का अधिकार है जिसे मैं इस देश की राष्ट्रभाषा समझता हूं। इस बीच एक शक्ति उत्पन्न हो गई और आज मैं यह देखता हूं कि देवनागरी लिपि सहित हिन्दी इस देश की राज-भाषा हो गई है।

***कुछ माननीय सदस्यः** अभी नहीं।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** कुछ लोग कहते है "अभी नहीं" किन्तु मैं यह कहता हूं कि यह एक तथ्य है। आप उस दिन को न आने देने के लिए कितना ही प्रयास क्यों न करें और, यद्यपि मैं उसे सुदिन समझता हूं किन्तु, भले ही आप उसे कुदिन समझें परन्तु वह दिन आ ही गया है। आप कितना ही विरोध क्यों न करें किन्तु देश ने यह निर्णय कर ही लिया है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी भाषा के साथ रिआयत की गई है किन्तु मैं समझता हूं "नहीं यह बात नहीं है।" यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही हुआ है। यह उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है जो कई वर्षों से, वास्तव में कई शताब्दियों से प्रवर्त्तन में रही है। मैं निवेदन करता हूं कि स्वामी रामदास ने हिन्दी में लिखा, तुलसीदास ने हिन्दी में लिखा, और आधुनिक काल के सन्त स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में लिखा। वे गुजराती थे किन्तु लिखते थे हिन्दी में। वे हिन्दी में क्यों लिखते थे? इस कारण कि इस देश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी थी। इसके अतिरिक्त मैं निवेदन करता हूं कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जब कांग्रेस में प्रवेश किया तो उन्होंने तुरन्त ही अंग्रेजी भाषा छोड़ दी और हिन्दी में बोलने लगे। उन्होंने अंग्रेजी में लिखने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपनी जीवनी भी हिन्दी में लिखी और उसका महादेव देसाई से अनुवाद कराया। जिन लोगों को यह भ्रम है कि यह भाषा लादी जा रही है, उनसे मेरा निवेदन है कि वह लादी नहीं जा रही है। हिन्दी इस देश में सर्वत्र बोली जाने लगी है और अब वह घर कर गई है। भाषाओं के बीच तनातनी रही और वे एक दूसरे से बाजी मारने की कोशिश में रहीं। जो भाषा शक्ति-सम्पन्न थी और जिसमें राष्ट्र-भाषा के तत्व थे वही आज इस देश की राष्ट्र-भाषा हो सकी है।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी** (मैसूर राज्य): क्या हम राज-भाषा नहीं कहेंगे?

***श्री आर.वी. धुलेकरः** मैं कहता हूं कि वह राज-भाषा है और वह राष्ट्र-भाषा भी है। आपको इस पर आपत्ति हो सकती है। आप भले ही अन्य किसी राष्ट्र के हों किन्तु मैं भारतीय राष्ट्र का, हिन्दी राष्ट्र का, हिन्दू राष्ट्र का, हिन्दुस्तानी राष्ट्र का हूं। मैं कह नहीं सकता कि आप यह क्यों कह रहे हैं कि वह राष्ट्र-भाषा

नहीं है। आपमें से कुछ लोग चाहते हैं कि संस्कृत राष्ट्र-भाषा हो जाये। मेरा निवेदन है कि संस्कृत अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है—वह विश्व की भाषा है। संस्कृत भाषा में चार सौ धातु हैं। संस्कृत सब धातुओं की मूल है। संस्कृत सारे विश्व की भाषा है। आप देखेंगे कि हिन्दी के राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा हो जाने के पश्चात् संस्कृत किसी दिन विश्व की भाषा हो जायेगी।

आज, चूंकि हमें राष्ट्रीयता से प्रेम है इसलिये मैं यह कहता हूं कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा है। आप कहते हैं कि हिन्दी राज-भाषा है, किन्तु मैं यह कहता हूं कि वह राष्ट्र-भाषा है। आपका यह कथन गलत है कि वह राज-भाषा है। भाषाओं की दौड़ में हिन्दी आगे बढ़ निकली है और अब आप उसे अपने लक्ष्य तक पहुंचने से नहीं रोक सकते। मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है कि संसद को इसका निर्णय करना चाहिये कि इस समय की राज-भाषा अर्थात् अंग्रेजी देश में कब तक चलती रहेगी। आपको कांग्रेस से भय है। आपको अपनी भावी संसद से भय है। इसी कारण इस प्रस्ताव में आपने आयोगों और समितियों का आयोजन किया है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि जब दो या तीन वर्ष के पश्चात् केन्द्रीय विधान-सभा में नये सदस्य आयेंगे तो ये सीगफीड और मैजिनों रक्षा-पंक्तियां किसी काम की नहीं रह जायेंगी। वे यही कहेंगे कि इस देश की भाषा हिन्दी है। मैंने तो यही निश्चय किया है।

***एक माननीय सदस्यः** किन्तु आपका निश्चय हमारे लिये बन्धनकारी नहीं है।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** मैं इस आशय के एक संशोधन को भेज चुका हूं कि इन सब आयोगों और समितियों को समाप्त कर देना चाहिये। आप कितना ही सुदृढ़ बांध क्यों न बना डालें। किन्तु भारत की राष्ट्रीय गंगा की वेगवती धारा उसे तोड़ कर अलग फेंक देगी और आयोगों और समितियों के संबंध में एक खण्ड को रखने में आपने जितना भी परिश्रम किया है वह विफल हो जायेगा। उसे प्रविष्ट करके आप केवल विद्वेष के बीज बोयेंगे और ....

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य महोदय से कहता हूं कि वे विचाराधीन प्रश्न को उठायें और अपने विषय तक ही सीमित रहें। मेरे विचार से इस प्रकार बोलने से आप अपने मामले को आगे नहीं बढ़ा रहे हैं।

***श्री आर. वी. धुलेकरः** श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि आप पहले ही दिन ऐसी कार्यवाही कर रहे हैं जिसे मिटाने के लिए संसद को कदम उठाना पड़ेगा। अर्थात् उसे यह निर्णय करना पड़ेगा कि इन आयोगों और समितियों को समाप्त किया जाये।

यदि आप इस राष्ट्र-भाषा के विकास के लम्बे इतिहास पर विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि इस देश की राज-भाषा को पन्द्रह वर्ष तक रहने देने का मैं केवल इस कारण विरोध नहीं कर रहा हूं मेरी यह धारणा है कि उसके नाम पन्द्रह वर्ष का पट्टा लिखने से राष्ट्र का हितसाधन नहीं होगा। मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं, "अंग्रेजी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार न करके आप

[श्री आर.वी. धुलेकर]

करेंगे क्या?" मैं आपसे विनयपूर्वक तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि आप स्थिति पर विचार करें। मैं यह अवश्य कहूंगा कि आप देश के हृदय से परिचित नहीं हैं। अंग्रेजी भाषा वीरों की भाषा नहीं है। वह वैज्ञानिकों की भी भाषा नहीं है। विज्ञान का एक शब्द भी अंग्रेजी भाषा का नहीं कहा जा सकता और न अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त अंक ही उस भाषा के अंक हैं। आप कहते हैं अगले पन्द्रह वर्षों तक इस अंग्रेजी भाषा को इस देश की राज-भाषा के रूप में रहने दिया जाये। जब मैं यह विचार करता हूं कि स्वराज्य स्थापित होने के पश्चात् भी हमारे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय तथा वैज्ञानिक अंग्रेजी भाषा में ही काम करते रहेंगे तो मैं कांप उठता हूं। और लोग क्या कहेंगे? लार्ड मैकाले की आत्मा क्या कहेगी? वह निश्चय ही हम पर हंसेंगे और कहेंगे "जानी वाकर का अब भी बोल बाला है।" वे यह भी कहेंगे, "भारतीयों को अंग्रेजी भाषा से इतना प्रेम हो गया है कि वे उसे पन्द्रह वर्ष तक रहने देना चाहते हैं।" यहां कुछ लोग कहते हैं कि वह बीस वर्ष तक रहेगी, और कुछ कहते है कि वह पचास वर्ष तक रहेगी, और कुछ तो यह कहते हैं कि न जाने कब तक वह हमारी राज-भाषा बनी रहेगी।

मैं अपने इन मित्रों से एक सीधा-सादा प्रश्न पूछता हूं और वह यह है। 1920 में अथवा 1885 में भी—क्योंकि इस सभा में कई लोग मुझसे वृद्ध हैं—हम इस देश की भाषा के संबंध में क्या विचार कर रहे थे? स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् हमारी भाषा क्या होनी चाहिये? मैं यह कहूंगा कि जिन लोगों का यह विचार था कि अंग्रेजी हमारी राज-भाषा होनी चाहिये वे सोते ही रह गये और स्वराज्य आ गया। जब 18 वर्ष की आयु में मैंने कांग्रेस में प्रवेश किया तो मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि स्वराज्य आयेगा। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह न था कि एक विशेष प्रकार से हम अपना शासन चलायेंगे। मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि हमारी भाषा कैसी है। मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि हमारा देश कैसा है। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह न था कि हमारी सभ्यता और संस्कृति कैसी है। यदि मुझे कुछ सन्देह ही होता तो मैं सुबह से शाम तक इस देश की सेवा क्यों करता और वह भी अपने जन्म दिन से ही अर्थात् जब से मैं वयस्क हुआ? मुझे विश्वास था कि मेरा देश मेरी अपनी भाषा को, तथा संस्कृति को, अपनायेगा। किन्तु आज मैं लोगों से यह सुन रहा हूं कि इस देश में पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी रहने देनी चाहिये। क्या अभी हम उससे तृप्त नहीं हुये हैं? वह पिछले दो सौ वर्षों से चलन में रही है और इस काल में हमें एक विदेशी भाषा के कारण दासत्व का अनुभव हुआ है। इस अंग्रेजी भाषा ने किसी महान पुरुष को उत्पन्न नहीं किया। हमारे दासत्व काल में भी हमारे यहां महान् पुरुषों ने जन्म लिया। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी भाषा के कारण ही हमें स्वातंत्र्य प्राप्त हुआ। मैं कहता हूं "नहीं"। केवल वही लोग स्वातंत्र्य-संग्राम में भाग लेने आगे बढ़े जो अंग्रेजी भाषा को भूल गये थे, और जो अंग्रेजी भाषा से बहुत घृणा करते थे, और जिन्हें यह विदित था कि अंग्रेजी भाषा एक विष है जिससे हमारे देश की मृत्यु हो जायेगी। मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर से नम्रतापूर्वक कहता हूं, "मैं आपकी भाषा नहीं समझता हूं। आप भी मेरी भाषा नहीं समझते हैं। आप इस देश की भाषा से पिछले चालीस वर्षों तक परिचित नहीं थे इसलिये आज आप मेरी भाषा नहीं समझ सकते।"

श्रीमान्, मैं यह स्वीकार करता हूं कि आज मैं उनकी भाषा को नहीं समझता हूं और आगे चल कर भी नहीं समझूंगा। वे अंग्रेजी भाषा के समर्थन में तर्क उपस्थित कर रहे हैं। श्रीमान् वे सदा यही विचार करते थे कि स्वराज्य नहीं आयेगा। इसी कारण इस ओर के मेरे मित्र हमेशा अंग्रेजी में ही काम करते रहे। हम छोटे लोगों ने अपने बढ़े-चढ़े पेशों को छोड़ दिया किन्तु अन्य लोग अपने बढ़े चढ़े पेशों को अंग्रेजी भाषा की सहायता से चलाते रहे। आज भी यदि संघीय न्यायालय में मैं वकालत करने लगूं तो मेरी वकालत खूब चल सकती है। किन्तु हमने गरीब रहने, देश को स्वतंत्र करने, तथा देश को बन्धनों से, विदेशी भाषा के बन्धनों से मुक्त करने का प्रण किया है। किन्तु यहां आप यह कहते हैं कि इस परिवर्तन को पन्द्रह वर्ष के लिए स्थगित कर दिया जाये। तब मैं पूछता हूं, आप वेदों और उपनिषदों को कब पढ़ेंगे? आप रामायण और महाभारत कब पढ़ेंगे और आप लीलावती तथा गणित की अन्य पुस्तकों को कब पढ़ेंगे? आप अपने तंत्रों को कब पढ़ेंगे? क्या पन्द्रह वर्ष के पश्चात्? आप लोग यह कह सकते हैं क्योंकि आप इस कथन में विश्वास रखते हैं कि "आप मरा तो जग मरा। हम इस देश में, इस पवित्र देश में, अंग्रेजी भाषा को राज-भाषा के रूप में आरोपित कर ही दें।" मेरे मित्र कहते हैं कि वे हिन्दी भाषा नहीं सीख सकते और उसके अंकों को तो कदापि नहीं सीख सकते। तब मैं आपसे पूछता हूं कि संसार के अन्य देश किस भाषा को आपकी राज-भाषा समझते हैं? मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो भारत-सरकार के विश्वास-भाजन हैं किन्तु मुझे यह सूचना मिली है कि रूस में जब हमारे राजदूत ने अपने परिचयपत्रों को अंग्रेजी भाषा में दिया तो उस देश ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। उनसे कहा गया कि उन्हें अपने परिचयपत्रों को अपनी ही भाषा में प्रस्तुत करना चाहिये। जब उन परिचयपत्रों को हिन्दी में भेंट किया गया तभी उन्हें स्वीकार किया गया। एक देश रूस है जो यह जानता है कि किसी देश की भाषा का किस प्रकार सम्मान करना चाहिये और एक हमारे मित्र हैं जो यह भी नहीं जानते कि अपनी भाषा का सम्मान किस प्रकार करना चाहिये। वे यह समझते हैं कि इस देश में वे अजनबी हैं यद्यपि यह देश उनका अपना देश है। वे यह कहते हैं कि धुलेकर एक ऐसी भाषा बोल रहे हैं जो हमारे देश की भाषा नहीं है। मैं यह कहता हूं और मेरा यह दावा है कि इस सभा में ही मैं एक ऐसा आदमी हूं जो हिन्दी भाषा से, मातृ-भाषा से प्रेम कर सकता है। मैं ही एक ऐसा आदमी हूं जो भारतीय विचारों को व्यक्त कर सकता हूं। *(विघ्न)*। मेरे अधिकांश मित्रों का जन साधारण से कोई सम्पर्क नहीं है। दर्शकों की गैलरियों की ओर देखिये। कितने थोड़े से लोग आपकी बात सुनने आये हैं। वे इस कारण नहीं आये हैं कि वे जानते हैं कि अब आप देश का हित साधन नहीं कर रहे हैं और वह इससे सिद्ध हो जाता है कि आपने इतने गलत और इतने बड़े प्रस्ताव को उपस्थित किया है कि वह समझ ही में नहीं आ सकता। आपको अपने प्रस्ताव में कम से कम शब्द रखने चाहियें। वह जितना लम्बा होगा उतना ही हमारा संविधान आशक्त हो जायेगा। आपने उस पर कई चीजें लटकाने तथा मोर्चाबन्दी करने और मैजिनो रक्षा-पंक्ति बनाने का प्रयास क्यों किया है। आपने यह इसलिये किया है कि आप का दिल यह कहता है कि यह देश की आवाज नहीं है। कहा जाता है कि हिन्दी भाषा को हमें देवनागरी लिपि और अनेक प्रकार के तांत्रिक अंकों के साथ नहीं रखना चाहिये और....

***एक माननीय सदस्यः** और मंत्रों के साथ भी।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** और मंत्रों के साथ भी ताकि भारत की आने वाली पीढ़ियां उसे ठुकरा न दें। मैं नम्रतापूर्वक बताना चाहता हूं कि इन मैजिनों रक्षा-पंक्तियों के होते हुये भी हिन्दी इस देश की भाषा होगी और देवनागरी लिपि तथा अंक इस देश की लिपि और अंक होंगे। मेरी यह प्रार्थना है कि इस प्रश्न को संसद के निर्णय के लिए छोड़ दिया जाये। क्या मैं अपने मित्रों से एक प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या वे लोकतंत्र से भय करते हैं? क्या वे संसद से भय करते हैं? क्या वे हमारी भावी संसदों में आने वाले अपने ही पुत्र-पौत्रों से भय करते हैं? क्या वे इसी कारण इस प्रश्न को संसद के निर्णय के लिए नहीं छोड़ना चाहते? वही लोग लोकतंत्र से भय करते हैं जो आयोगों और समितियों के लिए उपबन्ध पर उपबन्ध रख रहे हैं और वह इस कारण कि लोकतंत्र पर उनका विश्वास नहीं है। उनका इस पर विश्वास नहीं है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि न्याय करेंगे।

कल मेरे मित्र मि. हिफजुर रहमान ने एक अपील की थी—मैं कह नहीं सकता कि वे सभा में उपस्थित हैं या नहीं—जी हां, वे यहां है—और मैं उसके उत्तर में एक दो शब्द कहना चाहता हूं। उनको इससे बहुत परेशानी है और वे इससे बहुत उलझन में भी पड़े हुये हैं कि भारत के लोग हिन्दुस्तानी को क्यों भूल गये है, उर्दू लिपि को और फारसी लिपि को और हिन्दुस्तानी के नाम से विख्यात सभी सरो-सामान को क्यों भूल गये हैं। महात्मा गांधी का नाम लेकर उन्होंने अपील की थी कि हम हिन्दुस्तानी को देश की राज-भाषा बनायें और उसे फारसी और देवनागरी लिपियों में लिखें। मेरे विचार से वे इतिहास को भूल गये हैं और मैं उन्हें उसका कुछ स्मरण कराना चाहता हूं।

पिछले अडतीस वर्षों में, जब मैं कांग्रेस में था, इस मनाने की नीति का, अथवा इस मैत्री की नीति का, अथवा इस हिन्दुस्तानी के मामले का जो इतिहास रहा उसे कुछ स्मरण करने की आवश्यकता है। लोकमान्य तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और महात्मा गांधी का नाम लेकर मैं पूछता हूं कि पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों को भी क्यों स्थापित नहीं किया जाये? मैं यह कहता हूं कि कुछ हजार मुसलमानों के अतिरिक्त, जो इस देश के सपूत हैं, और जो अब भी हमारे साथ हैं, अन्य सभी मुसलमान हमारे साथ नहीं रहे, वे इस देश को अपना देश नहीं समझते थे। इसी कारण वे पृथक् होना चाहते थे। वे पृथक् निर्वाचन क्षेत्र चाहते थे। 1916 में भी और उसके पूर्व भी कांग्रेस यह जानती थी कि वह विदेशी शासकों के विरुद्ध एक त्रिमुखी संग्राम नहीं कर सकती और इसलिये.....

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप अपने संशोधन के संबंध में बोल रहे हैं? आपका साथ कोई नहीं दे रहा है।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** जी हां, मैं हिन्दुस्तानी का विरोध कर रहा हूं और मैं जानता हूं कि आप मेरा साथ कभी नहीं देंगे।

मैं यह कह रहा था कि कांग्रेस यह जानती थी कि वह त्रिमुखी संग्राम नहीं कर सकती है और इसीलिये देश के अधिकांश मुसलमानों को संग्राम से अलग

रखना पड़ा। भारतीयों और अंग्रेजी सरकार के बीच सीधे-सीधे संग्राम हुआ। और इस मनाने वाली नीति के कारण...

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य महोदय को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि यह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है। हम भाषा के प्रश्न पर बहस कर रहे हैं और वह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है।

श्री आर.वी. धुलेकरः जी नहीं, श्रीमान्, किन्तु मैं मौलाना रहमान को जानता हूं और मुझे संयुक्त प्रान्त का अनुभव भी है। उन्होंने वहां और यहां भी भाषण दिये हैं। मैं यह कहता हूं कि मैंने कल जो कुछ सुना वह साम्प्रदायिक आधार को मानकर कहा गया था। मैं उन्हें इतिहास का राष्ट्रीय निर्वचन सुनाने जा रहा हूं। मौलाना आजाद और किदवई साहब के समान हमारे मित्रों को छोड़कर अधिकांश मुसलमान.....

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या यह सब प्रासंगिक है?

***अध्यक्षः** जी नहीं, मैं वक्ता महोदय को इसका कई बार स्मरण करा चुका हूं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः** किन्तु फिर भी वे वही बातें कहते जाते हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से आप अपने पक्ष का समर्थन नहीं कर रहे हैं।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** श्रीमान्, मैं इस विषय पर अधिक कुछ नहीं कहूंगा। अंग्रेजों से संघर्ष करने के लिए उस नीति को अपनाना आवश्यक था। अब हमें यह ज्ञात हुआ है कि वह नीति असफल रही और उसके कारण हम विपत्ति में पड़ गये हैं। हमने इन कष्टों को मैत्री से और भ्रातृभाव से झेला। हमने कष्ट सहन किये और कष्ट सहन कर रहे हैं। इसलिये मुझे यह बहुत दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि इस देश के प्रश्न को असाम्प्रदायिक आधार पर हल करने के लिये सच्चाई से प्रयत्न करने पर भी परिणाम यह हुआ है कि हमें अब भी कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि मेरे मित्र मौलाना हिफजुर रहमान यह अच्छी प्रकार समझ लें कि यह हमारे सच्चे प्रयत्नों, अर्थात् विफल हुये सच्चे प्रयत्नों की प्रतिक्रिया ही है कि दूसरी ओर तेजी आ गई है.....

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः** वाह, वाह!

***श्री आर.वी. धुलेकरः** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मैं अपने माननीय मित्र प्रधानमंत्री महोदय के विचारों को व्यक्त कर सका हूं। वास्तव में यदि उनके प्रयत्न सफल हुये होते और उन्होंने तथा राष्ट्रपिता ने जो कुछ कहा था वह चरितार्थ हुआ होता तो मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को न हुई होती। एक क्षण के लिये भी यह विचार न कीजिये कि मैं साम्प्रदायिक विचार रखता हूं। यदि मैं हिन्दुस्तानी

[श्री आर.वी. धुलेकर]

का विरोध करता हूं तो इस कारण विरोध नहीं करता हूं कि मुझे इन लोगों से प्रेम नहीं है। मैं उसका विरोध इनसे प्रेम, सच्चा प्रेम, भाई-भाई का प्रेम होने के कारण ही करता हूं। यदि आज कोई व्यक्ति हिन्दुस्तानी के पक्ष में बोले तो उसकी बातों को कोई नहीं सुनेगा। आपकी बातों से लोगों को भ्रम होगा। और लोग कुछ का कुछ बयान करेंगे। इसलिये मौलाना हिफजुर रहमान को सच्चे दिल से मैं यह सलाह देता हूं कि वे दो तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करें, उसके पश्चात् वे उर्दू भाषा को, फारसी लिपि को अपना सकेंगे। किन्तु आज वे इसका विरोध न करें क्योंकि हमारा राष्ट्र, वह राष्ट्र जिसने अनेक कष्ट सहन किये हैं, आज उनकी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं है। मैंने उनकी बातें सुनी हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूं और मैं यह जानता हूं कि उनकी धारणा क्या है। मैं स्वयं फारसी का विद्यार्थी रहा हूं। मैंने उर्दू भी पढ़ी है और मैं उससे प्रेम करता रहा हूं। मैं यह कह सकता हूं कि मैंने फारसी और उर्दू में अपने मित्र मौलाना हिफजुर रहमान से कहीं अधिक लिखा है। बीस वर्ष तक मेरे पास एक मुसलमान क्लर्क रहा। जब झांसी में और अन्य जगहों मे हिन्दु मुसलमानों का दंगा हुआ तो वह मेरे ही पास रहा। मेरे कई मित्र मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा, "आपके पास एक मुसलमान क्लर्क है, उसे निकाल दीजिये।" मैंने कहा, "नहीं वह मेरा भाई है, वह मेरा अपना संबंधी है, रक्त संबंधी है।" मेरा यह विश्वास है कि भारत में रहने वाले तथा पाकिस्तान में रहने वाले सभी मुसलमान मेरे रक्त संबंधी हैं और मेरे भाई है। अपने देश पर तथा अपने पर अटल विश्वास होने के कारण ही मैं आज तक कांग्रेस में हूं। कांग्रेस हिन्दुओं अथवा मुसलमानों की नहीं है। वह सभी की है यह सुन कर आश्चर्य हो सकता है: कि एक व्यक्ति, जिसका यह दावा हो कि हिन्दी राष्ट्र भाषा हो वह यह भी दावा करता है कि वह फारसी और उर्दू का भी मित्र है। मुझे बहुत सहानुभूति है.....

***अध्यक्ष:** अच्छा यह होगा कि माननीय सदस्य महोदय अब समाप्त कर दें। उनकी बातें प्रासंगिक नहीं हैं और सभा उन्हें सुनने के लिये तैयार नहीं है।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधनों को उपस्थित करता हूं और इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं कि देवनागरी लिपि तथा हिन्दी अंकों के साथ हिन्दी भाषा को सीधे-सीधे स्वीकार किया जाये, क्योंकि कोई अन्य भाषा भारत की राज-भाषा नहीं हो सकती, एक क्षण के लिए भी नहीं हो सकती।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आरम्भ में ही आपसे तथा सभा से इसके लिये क्षमा चाहता हूं कि जब उसकी बैठक प्रारम्भ हुई और आपने कृपा करके मुझे अपने संशोधन पर बोलने के लिए बुलाया तो उस समय मैं यहां उपस्थित नहीं था। इसका कारण यह था कि मैं अन्यत्र भारत-सरकार की एक महत्वपूर्ण समिति में काम कर रहा था। इसलिये यह बात नहीं थी कि मैं अपने शैथिल्य के कारण नहीं आ सका।

श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं एक ऐसे संशोधन का प्रस्तावक हूं जिससे इस सभा के बहुत से सदस्यों तथा बाहर के लोगों को भी आश्चर्य हुआ

है। मैं यह कहूंगा कि इस प्रस्ताव का देश में कई लोगों ने स्वागत किया है और कई लोगों ने स्वागत नहीं भी किया है। मुझे कुछ सूचनायें मिली हैं और मेरे पास बहुत सी चिटिठ्यां भी आई हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि मैंने बहुत उपयुक्त तथा सम्मानपूर्ण मार्ग का अवलम्बन किया है। कुछ पत्रों से यह भी प्रकट होता है कि संस्कृत को भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव रख कर मैं भारत को कई शताब्दी पीछे ढकेल रहा हूं। मैं आपको तुरंत ही यह बता देना चाहता हूं कि मेरा यही दृढ़ विश्वास है कि इस देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् यदि इस देश की कोई भाषा राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा हो सकती है तो वह निःसंदेह संस्कृत ही है।

***कुछ माननीय सदस्यः** जी नहीं, जी नहीं।

***कुछ माननीय सदस्यः** जी हां, जी हां।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** मैं उन लोगों के हृदयों को दुखित नहीं करना चाहता जिनका यह विचार है कि हिन्दी पर ही उनका अस्तित्व निर्भर है। उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु वे इसका ढोल न पीटें क्योंकि इससे अन्ततोगत्वा उन्हें का उद्देश्य विफल हो जायेगा। अध्यक्ष महोदय, मैंने आरम्भ से ही अपने मित्रों से अपना संशोधन, अर्थात् संस्कृत को भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के बारे में अपने प्रस्ताव को अपनाने के लिये इसलिये आग्रह नहीं किया कि इस सभा के कई जिम्मेदार माननीय सदस्य यहां के दो महत्वपूर्ण विरोधी पक्षों के बीच सम्मानपूर्ण समझौता कराने के लिये गम्भीर प्रयत्न कर रहे थे और उनके संबंध में मैं स्वयं चिंतित था। मैं अलग रहा और मैंने किसी पक्ष का भी साथ नहीं दिया क्योंकि मैं समझता था कि मैं सच्चाई के साथ किसी पक्ष का भी समर्थन नहीं कर सकता हूं। किन्तु जब बातचीत एक स्तर तक पहुंच गई, और हमें यह आशा होने लगी कि भारत की राज-भाषा के संबंध में सर्वसम्मति से एक ऐसा सूत्र अपनाया जाने वाला है जो दोनों पक्षों को मान्य होगा और दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए पर्याप्त त्याग करने वाले हैं, तो उस समय मैंने यह विचार किया कि मुझे अपना संस्कृत भाषा-संबंधी प्रस्ताव उपस्थित नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे बिगाड़ होने की आशंका थी। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से और मैं कहूंगा कि देश के दुर्भाग्य से घटना-चक्र की गति ही बदल गई और वह भी एक ऐसे विषय के कारण जो मेरे विचार से बहुत छोटा था और जिसका महत्व अपेक्षाकृत बहुत कम था। यह खेदजनक है।

आज हम इस संविधान-सभा में भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के संबंध में जो निर्णय करने जा रहे है। वह एक भाग्य-विधायक निर्णय है। श्रीमान् सभा की इस समय की भावनाओं को देखते हुये मुझे वास्तव में इसका भय है कि बहुमत से चाहे जो भी संशोधन स्वीकार किया जाये, अर्थात् चाहे देवनागरी लिपि और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूपों के साथ हिन्दी के संबंध में मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा मसौदा समिति की ओर से उपस्थित प्रस्ताव स्वीकार किया जाये अथवा दूसरे वर्ग का, अर्थात् पूर्ण हिन्दी और सब कुछ हिन्दी ही मैं चाहने वाले वर्ग का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये, हारा हुआ वर्ग उस सभा

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

से हताश होकर और बहुत कटुता लेकर बाहर जायेगा? यह कटुता कई सप्ताह से इस प्रश्न पर वाद-विवाद होने के कारण उत्पन्न हुई है। इसी कारण मैं सभा से यह आग्रह करने के लिए आगे बढ़ा हूं कि केवल संस्कृत को ही भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये और अन्य किसी भाषा को स्वीकार न किया जाये, यद्यपि मैं जानता हूं कि यह मेरी धृष्टता है। श्रीमान्, संक्षेप में मेरे संशोधनों का उद्देश्य यह है कि मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो मसौदा उपस्थित किया है उसमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत रखा जाये और तत्स्थानी परिवर्तन किये जायें.....

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या अंक भी संस्कृत ही में रहेंगे?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** मैं इस प्रश्न को अभी उठाऊंगा।

इसके अतिरिक्त मेरे नाम से एक अन्य सारवान संशोधन भी है जिसका आशय यह है कि संघ की भाषाओं की सूची में संस्कृत का भी उल्लेख किया जाये। यह एक आश्चर्य की बात है कि मेरे संशोधन की सूचना देने के पूर्व किसी ने भी संस्कृत को भारत की भाषाओं में से एक भाषा मानने के औचित्य पर विचार तक नहीं किया। हम इतने नीचे गिर गये हैं। मैं संस्कृत को स्वीकार करने के संबंध में आपसे गम्भीरतापूर्वक आग्रह करते हुये तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। इस देश में कौन व्यक्ति यह कहेगा कि संस्कृत भारत की भाषा नहीं है? मुझे यह तर्क सुनकर आश्चर्य हुआ कि वह भारतीय भाषा नहीं है, वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। जी हां, वह अवश्य ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अथवा विश्व-भाषा है और वह इस अर्थ में कि वह महत्वपूर्ण, सुसम्पन्न और महान होने के कारण भारत की सीमाओं को पार करके सुदूर देशों में प्रतिष्ठित हुई है। संस्कृत भाषा में भारत की प्राचीन प्रौढ़ संस्कृति मूर्तिमान होने के कारण ही भारत के बाहर सभी देश हमें आदर की दृष्टि से देखते हैं। क्या इस सभा में कोई व्यक्ति इस कथन के विरुद्ध कुछ कह सकता है? क्या संसार भारत का सम्मान उसके भौगोलिक आकार अथवा वृहत् जनसंख्या के कारण करता है? विद्वेष रखने वाले विदेशियों ने हमारे देश का वर्णन करते हुये कहा है कि यह देश अपनी विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं के कारण दयनीय दशा को प्राप्त है। ऐसी धारणा होने पर भी उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूर्व का सन्देश ज्ञात करने का प्रयास किया और संस्कृत भाषा का आश्रय लिया।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संबंध में सूचना चाहता हूं कि यह भाषा सन्कृत कही जाती है या संस्कृत?

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मैं इस हास्य के लिये अपने माननीय मित्र श्री कामत का आभारी हूं। यह हास्य ही है तो ठीक है।

***श्री एच.वी. कामत:** यह हास्य नहीं है। मैं हास्य नहीं करना चाहता था।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** चूंकि मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं इसलिये यह स्वाभाविक है कि मैं उस भाषा के अनुसार ही शब्दों का उच्चारण करूं।

श्रीमान्, संस्कृत की परम्परा संसार की सभी भाषाओं की परम्परा से अधिक प्राचीन और सम्मानपूर्ण है। मैंने संसार के कुछ महान प्राच्य-वेत्ताओं की सम्मतियों का संग्रह किया है। प्रोफेसर मैक्समूलर, कीथ, टेलर, सर विलियम हंटर, सर विलियम गोलबक, सेलीगमैत, शोपेनहावर, गेटे तथा इन्हीं के समान मैकडोनेल और डुबोई जैसे कई अन्य लोगों ने संस्कृत को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, और वह हमें खुश करने के लिए नहीं, क्योंकि जब इन लोगों ने अपनी सम्मतियां व्यक्त की थीं उस समय हम एक विदेशी शक्ति के अधीन थे, जिसकी ओर से हमारे विरुद्ध मिस मेयो के समान कई लोग प्रचार करते थे। यह सभा को स्मरण होगा कि महात्मा गांधी ने मिस मेयो की "मदर इंडिया" नाम की पुस्तक को "नालियों के इंस्पेक्टर की रिपोर्ट" कहा था। विदेशों में भारत के विरुद्ध स्वार्थ-साधकों के इतना दूषित प्रचार करने पर भी संसार को इन प्राच्य-वेत्ताओं से धीरे-धीरे वास्तविक भारत का परिचय मिला। इन प्राच्य-वेत्ताओं ने संस्कृत भाषा तथा संस्कृत साहित्य के अध्ययन में ही अपना सारा जीवन लगा दिया। इन महान सेवकों को यह घोषित करते हुये तनिक भी संकोच नहीं हुआ कि "संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन और सुसम्पन्न भाषा है। वही एक विश्व-भाषा है और संसार की सभी भाषाओं की जननी है।"

आज भारत को सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् अपने भाग्य का स्वरूप स्वयं निश्चित करने का अवसर मिला है। मैं गम्भीरतापूर्वक पूछता हूं कि क्या वह संसार की भाषाओं की मातामही, संस्कृत भाषा को अपनाने में जो अब भी सजीव और सशक्त है, लज्जा का अनुभव कर रहा है? स्वतंत्र भारत में उसे जिस पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकार है उसको हम क्या उसे नहीं प्रदान करेंगे? मैं गम्भीरतापूर्वक यह प्रश्न पूछता हूं। मैं यह जानता हूं कि यह कहा जायेगा कि यह एक मृत भाषा है। जी हां, मृत किसके लिए? मृत आपके लिये, क्योंकि आप स्वयं मृत हैं और महानता की भावना से तथा अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की महान तथा उत्कृष्ट बातों से प्रेरित नहीं होते। आप छाया के पीछे दौड़ते रहे हैं और आपने अपने महान साहित्य की सारवान बातों को समझने का कभी भी प्रयास नहीं किया। यदि संस्कृत एक मृत भाषा है तो मैं यह कहूंगा कि वह अपनी कब्र से हम पर शासन कर रही है। भारत में कोई भी व्यक्ति संस्कृत से पीछा नहीं छुड़ा सकता। हिन्दी को इस देश की राज-भाषा बनाने के संबंध में आपने जो प्रस्ताव रखा है उसमें एक अनुच्छेद में आपने यह उपबन्ध रखा है कि इस भाषा के लिये स्वतंत्रता से संस्कृत से शब्द लेने होंगे। इस प्रकार परोक्ष में आपने संस्कृत को स्वीकार किया है क्योंकि अन्यथा आप असहाय और अशक्त हैं।

किन्तु मेरा यह निवेदन है कि वह मृत भाषा नहीं है। मैंने जिन स्थानों की यात्रा की है वहां जब कभी मैं अपने आशय को अन्य भाषाओं में नहीं समझा सका तो मैंने संस्कृत का आशय लिया और मुझे अपने आशय को सुबोध करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। बीस वर्ष पूर्व जब मैं मद्रास में था तो मैं मदुरा, रामेश्वरम्, तिरुपति आदि के मंदिरों में गया किन्तु अंग्रेजी भाषा द्वारा अथवा किसी भी अन्य भाषा द्वारा मैं अपने आशय को नहीं समझा सका किन्तु जिस क्षण मैंने संस्कृत में बोलना आरम्भ किया उसी क्षण वहां के लोग मेरे आशय को समझने लगे और हम विचारों का आदान-प्रदान करने लगे। मैं यह धारणा बना कर लौटा

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

कि कम से कम मद्रास में संस्कृत भाषा में वर्णित संस्कृति विद्यमान है। अपनी तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ जैसी प्रादेशिक भाषाओं के लिये सम्भवत: बहुत उत्साह होने पर भी दक्षिणात्यों ने संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया।

हमें संस्कृत का बहुत मोटा ज्ञान है। हम समझते हैं कि संस्कृत में भारी भरकम शब्द तथा लम्बी-लम्बी आडम्बरपूर्ण पदावलियां ही होती है और उसकी एक ही शैली है जो बाण की कादम्बरी अथवा हर्ष चरित्र अथवा दशकुमार चरितम् में मिलती है। किन्तु मैं निवेदन करना चाहता हूं कि एक प्रख्यात कवि ने थोड़ा बहुत गर्वान्वित होकर ये शब्द कहे थे:-

साहित्य सुकुमारवस्तुनि

दृढ़-नय-ग्रह-ग्रंथिल-

तर्क-वाङमय-संग-विधातरि

समान-लीलायिता भारती।

आपका विचार है कि मैं सीधी-सादी संस्कृत में सरल तथा प्रभावपूर्ण रचनायें नहीं कर सकता हूं "चाहे कवित्व के समान कोई सुकुमार विषय हो, अथवा दर्शन और तर्क के समान विद्वत्तापूर्ण किन्तु शुष्क विषय हो, मैं इस भाषा में बड़ी सुगमता से रचनायें कर सकता हूं।" संस्कृत एक ऐसी भाषा है कि उसका उपयोग दर्शन और विज्ञान जैसे बहुत गम्भीर विषयों के लिये भी किया जा सकता है और बहुत सरल साहित्य के लिये भी। वह सभी प्रकार के विचारों को व्यक्त करने के लिये बहुत सरल माध्यम है। मुझे विश्वास है कि जिन लोगों को संस्कृत का ज्ञान है वे कुछ शताब्दी पूर्व इस महान कवि ने जो कुछ कहा था उसके प्रत्येक शब्द का समर्थन करेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** क्या आप कृपा करके संस्कृत में बोलेंगे ताकि हम सभी लोग आपके विचारों को समझ सकें?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** मैं यहां अपनी संस्कृत की विद्वता को नहीं बघारना चाहता। मैं वह गलती करने नहीं जा रहा हूं जो यहां मेरे कुछ मित्रों ने की है। उनसे प्रार्थना की गई कि वे अंग्रेजी में बोलें ताकि उन्हें सभी लोग समझ सकें किन्तु अपने अत्यधिक उत्साह के कारण वे अपनी पसन्द की भाषा में ही बोलते रहे। मैं यह नहीं करूंगा। मैं यह चाहता हूं कि इस सभा का प्रत्येक माननीय सदस्य मेरे विचारों को समझे। यदि मैं संस्कृत में बोल सकता हूं तो यह मेरे लिये कोई बड़े गौरव की बात नहीं है। मुझे संस्कृत में बोलने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। यदि मैं उस भाषा में नहीं बोल सकता हूं तो मुझे अपनी संस्कृति तथा शिक्षा पर लज्जा आनी चाहिये। मुझे उस प्रकार देखने का प्रयास न कीजिये जैसे कि आप किसी विचित्र वस्तु को देखते हों। जब मैं संस्कृत के पक्ष में बोल रहा हूं तो सभा में कहीं पर भी मेरी बातों का मखौल न उड़ाया जाये। मैं इस

सभा के प्रत्येक सदस्य से पूछता हूं, चाहे वह किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, "क्या आप अपनी मातामही को अस्वीकार करना चाहते हैं?"

श्रीमान्, हम इस देश की प्रान्तीय भाषाओं पर अर्थात् बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ आदि पर गर्व करते हैं। उनमें भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के वैभव के अनेक रूप प्रदर्शित हैं यह किसी एक प्रान्त की सम्पत्ति नहीं है। यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। किन्तु इन सभी भाषाओं का स्रोत संस्कृत ही है। वही सब भाषाओं की जननी है। दक्षिण की भाषाओं ने भी अपने शब्द भंडार को सुसम्पन्न बनाने के लिये संस्कृत से शब्द लिये हैं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि हम दिल लगाकर काम करें तो हम अपने जीवन के सामान्य प्रयोजनों के लिये संस्कृत की एक सरल, सशक्त, सुगढ़ तथा सुमधुर शैली विकसित कर सकते हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इसी समय से सभी लोग संस्कृत में बोलने लगेंगे। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह नहीं है। मैंने अपने संशोधन में यह प्रस्ताव रखा है कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी उन सभी प्रयोजनों के लिये राज्य की राज-भाषा के रूप में प्रयोग की जायेगी, जिन प्रयोजनों के लिये वह संविधान के प्रारम्भ के पूर्व प्रयोग की जाती थी। इस अवधि के पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर संस्कृत उत्तरोत्तर प्रयुक्त होगी। मेरे संशोधन का उद्देश्य यही है।

मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि प्रत्येक प्रान्त में और प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा सिखाने के लिये प्रबन्ध हैं। मुझे जैसे कुछ लोगों न इस आशा में कि हिन्दी देश की राज-भाषा के रूप में स्वीकार होगी उसे प्रचलित करने का प्रयास किया किन्तु हमें, कम से कम बंगाल में, हिन्दी अध्यापकों के मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। आपको यह सुनकर आश्चर्य हुआ होगा। यह एक समस्या है। यदि आप अपने सहस्त्रों नवयुवकों को हिन्दी सिखाना चाहते हैं तो आपको अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी। आपको साहित्य की आवश्यकता पड़ेगी। आपको छापेखानों, पुस्तकों, पाठ्य-पुस्तकों, प्रारम्भिक पुस्तकों, अध्यापकों और सभी बातों की आवश्यकता पड़ेगी। यह एक बहुत बड़ी कठिनाई है। चाहे केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, यह समस्या आसानी से हल होने वाली नहीं है। आपको यह स्मरण रखना होगा कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपने को हिन्दी का विद्वान कह सकता है। मैंने उनकी परीक्षा करवाई है, जिनमें वे निकम्मे साबित हुये हैं। इसके विपरीत यदि आप संस्कृत को राजभाषा बनायेंगे तो आप देखेंगे कि उसे सिखाने के लिये पहले से ही प्रबन्ध है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक स्तर तक संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है और उसके पश्चात् ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। इसलिये संस्कृत के पठन-पाठन के संबंध में कोई कठिनाई नहीं होगी।

***श्री बी.एन. मुनावल्ली** (बंबई : जनरल): वही कठिनाई होगी।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मैं जानता हूं कि चूंकि श्री मुनावल्ली बूढ़े हैं—मुझे आशा है कि वे बूढ़ा कहने से रुष्ट न होंगे—इसलिये उनके लिये एक नई भाषा

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

सीखना कठिन होगा। किन्तु यदि श्री मुनावल्ली का यह विचार हो कि वे संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी अधिक सरलता से सीख सकते हैं तो उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। वे अपना यह विचार बनायें रखें।

मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने बहुत विद्वेष की भावना देखी है। मैं यह नहीं कहता कि यह भावना ठीक है किन्तु मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि यह भावना विद्यमान है। कई लोग यह सोचने लगे हैं, "सब भाषाओं में से आखिर हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा क्यों बनाया जा रहा है? आखिर वह है तो एक प्रान्तीय भाषा ही।" यह सभी स्वीकार करेंगे कि वह एक प्रान्तीय भाषा है। आप एक प्रान्तीय भाषा को राष्ट्र भाषा का पद देने जा रहे हैं। आप इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। इसमें बहुत कुछ सच्चाई है। इसे कौन स्वीकार नहीं करेगा कि बंगला, तामिल, तेलुगु, गुजराती, मलयालम, मराठी और कन्नड़ भाषाओं का साहित्य सुसम्पन्न है और उन भाषाओं के बोलने वाले उन पर गर्व कर सकते हैं?

किन्तु अहिन्दी क्षेत्रों के सदस्य इसके लिये आग्रह नहीं कर रहे हैं कि उनकी प्रान्तीय भाषाओं को भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। क्या आप समझते हैं कि इसमें कितनी त्याग की भावना है? मैंने इसके लिये कभी अनुरोध नहीं किया कि बंगला को देश की राज भाषा बनाई जाये। मैंने इसका सुझाव कभी नहीं रखा यद्यपि मेरी यह धारणा है कि मेरी भाषा और मेरा साहित्य बहुत सुसम्पन्न है और उसे कबीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने और भी अधिक सुसम्पन्न बना दिया है तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्ति करा दी है। मैंने यह विचार किया कि संघ के हितों को ध्यान में रखकर हमें एक दूसरे से सहयोग करके एक ऐसी भाषा बनानी चाहिये, वह हिन्दी ही क्यों न हो, जिसे हम सारे देश में काम में ला सकते हैं।

किन्तु बहुत आगे बढ़ने पर भी हम एक स्थान पर अटक गये। मेरा अपना यह विचार है कि यह एक दुर्भाग्य की बात है और खेदजनक भी है। मेरे कुछ मित्रों ने मेरी आलोचना करते हुये कहा है, "जब आप एक ऊंट को निगल गये हैं तो एक मक्खी को निगलने में क्यों परेशान हो रहे हैं?" वे पूछते हैं कि जब आप हिन्दी लिपि के लिये सहमत हो गये हैं तो हिन्दी अंकों पर क्यों आपत्ति कर रहे हैं। क्या आपका सचमुच यह विचार है कि जब तक प्रत्येक बात शत प्रतिशत हिन्दी में न हो तब तक भारतीय स्वातंत्र्य से कोई लाभ नहीं है और उसका कोई अर्थ नहीं है? क्या कोई व्यक्ति वास्तव में यह विचार रखता है? यदि वास्तव में यह बात है तो उन्हें यह भी समझना चाहिये कि दूसरे पक्ष के लोग भी अपनी भाषाओं को अपनाने के लिये यही तर्क उपस्थित कर सकते हैं। श्रीमान्, इस प्रश्न पर बहुत तनातनी रही है। माननीय गोविन्द बल्लभ पन्त ने एक अवसर पर एक बहुत सुन्दर भाषण दिया। उन्होंने कहा "हम अहिन्दी-भाषी लोगों पर इस भाषा को नहीं थोपना चाहते हैं।" यह वक्तव्य भारत के सबसे बड़े प्रान्त के प्रधान मंत्री की शोभा बढ़ाता है। किन्तु दुर्भाग्य से वही प्रान्त, न कि मेरा प्रान्त, इस संबंध में अब समस्या रूप हो गया है। भाषा का विवाद वहीं से आरम्भ हुआ है। हिन्दी उर्दू का तथा हिन्दी, भाषा और नागरी अंकों का विवाद वहीं से

आरम्भ हुआ और वह इतना बढ़ गया कि दोनों पक्षों को अपने मतभेदों को मिटाने के लिये कदम उठाना पड़ा। जब हमारे प्रयत्न किसी अंश में सफल नहीं हुये और समझौते के लिये कई वक्ताओं ने जो अपीलें कीं वे भी निष्फल हुईं तो संयुक्तप्रान्त के प्रधानमंत्री ने घोषित किया: "नहीं, नहीं। हम आप पर हिन्दी थोपने नहीं जा रहे हैं, हम एक ऐसा सूत्र अपनायेंगे जिस पर सब सहमत होंगे।" यदि यह हिन्दी भाषा को, देवनागरी लिपि को, हिन्दी अंकों को थोपना नहीं है तो मुझे बताया जाये कि थोपना क्या होता है। यदि आप यह कहते हैं कि हिन्दी सभी की सहमति से स्वीकार की जायेगी और वह थोपी नहीं जायेगी, और साथ ही हिन्दी की सभी मांगों को स्वीकार करने के लिये जोर देते हैं, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि हम स्वेच्छा से आत्मसमर्पण करने की मांग करते हैं? अपने प्रस्ताव के संबंध में साफ-साफ बातें कहिये। इस प्रकार भाषा का प्रश्न हल नहीं किया जाता। भाषा राष्ट्र की जीवनदायिनी शक्ति होती है। उसके साथ मखौल नहीं किया जा सकता। मेरा यह विश्वास है कि भाषा किसी नपी तुली प्रक्रिया के अनुसार नहीं बनाई जा सकती और न वह किसी निश्चित तिथि तक ही तैयार हो सकती है। इस प्रकार की अन्य बातों के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। भाषा सजीव होती है—उसका विकास होता है और वह उन्नति करती है।

अब यदि सारे भारत के लिये आप एक भाषा को स्वीकार करना चाहते हैं तो इस पद पर प्रतिष्ठित होने का सबसे अधिक अधिकार किस भाषा को है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोकतंत्र की दृष्टि से और इस दृष्टि से कि सबसे अधिक लोग किस भाषा को बोलते हैं, और समझते हैं, सम्भवत: यह अधिकार हिन्दी को है। उसे लगभग चौदह करोड़ लोग बोलते हैं और उसी का सबसे अधिक अधिकार है। किन्तु हिन्दी की अनेक बोलियां हैं। संयुक्तप्रान्त के लोगों ने मुझे बताया है कि यदि हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया तो पश्चिमी संयुक्तप्रान्त के लोगों को उसे नये सिरे से सीखना होगा क्योंकि वे उस भाषा से अनभिज्ञ हैं। जब 1931 के आंकड़ों के आधार पर यह दावा किया जाता है कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे अधिकांश लोग बोलते हैं तो लोगों का साधारणतया लोकतंत्र के संबंध में जो विचार होता है उसकी दृष्टि से यह ठीक हो सकता है। यदि किसी देश का एक बहुत बड़ा वर्ग एक भाषा को बोलता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह भाषा अधिकांश लोगों की भाषा हो।

इस संबंध में मैं आपको एक उदाहरण दूंगा जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि भाषा के प्रश्न के संबंध में कितनी उत्तेजना उत्पन्न हो सकती है। मैं आपको बताऊंगा कि पिछले वर्ष पूर्वी पाकिस्तान में क्या हुआ। बंगाल के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान के निर्माता ने यह आदेश निकाला कि सारे पाकिस्तान की राज-भाषा उर्दू होगी। आप जानते हैं कि पूर्वी बंगाल में इस आदेश से क्या प्रतिक्रिया हुई? पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली मुसलमान यह जानकर कि उन पर उर्दू थोपी जा रही है, बहुत उत्तेजित हुये और उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारी बंगला भाषा को नष्ट करने जा रहे हैं? हमने पाकिस्तान के इस्लामी राज्य की स्थापना में हृदय से आप

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

का साथ दिया है। क्या अब आप हमारी भाषा में हस्तक्षेप करने जा रहे हैं? "पूर्वी पकिस्तान में सर्वत्र प्रदर्शन होने लगे और ऐसे अवसरों पर साधारणतया जो कदम उठाये जाते हैं वे कदम उठाये गये, अर्थात् अश्रु गैस छोड़ी गई और लाठियां चलाई गईं इत्यादि। पाकिस्तान के अधिकारियों ने यह कह कर लोगों को डराया कि इस आन्दोलन के लिये हिन्दुओं का पंचम स्तम्भ उत्तरदायी है। किन्तु तुरन्त ही मुसलमानों का विद्वानों का वर्ग तथा उनकी शैक्षिक तथा सांस्कृतिक संस्थायें आगे बढ़ीं और उन्होंने कहा कि यह सब बकवास है। उन्होंने कहा, "आप रवीन्द्र नाथ ठाकुर की भाषा का गला घोटना चाहते हैं। हम इसे सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं।" भाषा के प्रश्न को लेकर विद्रोह करने पर लोगों पर लाठी चलाई जाती हैं और उन्हें बन्दी बनाया जाता है। ढाका में विद्यार्थियों और प्रोफेसरों की एक सभा में मि. जिन्ना ने जब लोगों से यह कहा कि वे अर्बी लिपि में उर्दू को नवनिर्मित इस्लामी राज्य की भाषा के रूप में स्वीकार करें तो 'नहीं, नहीं' की आवाजें सुनाई दीं। जब वे और कुछ कहने लगे तो इस प्रकार के नारे जोर-जोर से लगाये जाने लगे और बन्द नहीं हुये। ये बातें समाचारपत्रों में नहीं आईं। सात दिन तक प्रयत्न किये गये किन्तु वे सब विफल हुये और मि. जिन्ना को कराची वापस जाना पड़ा। इसके पश्चात् इस आशय की एक विज्ञप्ति निकाली गई कि पूर्वी पाकिस्तान की राजभाषा बंगला ही रहेगी। पाकिस्तान के बंगला बोलने वाले मुसलमानों ने कहा कि वे अर्बी लिपि में उर्दू को इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि मि. जिन्ना केन्द्रीय पाकिस्तान में बंगला को भी एक राज-भाषा बनायें। उन्होंने कहा कि पूर्वी पाकिस्तान में उर्दू स्वीकार करने के पूर्व वे कराची जायेंगे और देखेंगे कि प्रत्येक स्थान पर उर्दू के साथ बंगला भी लिखी हुई है या नहीं। पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमानों से यह प्रत्युत्तर पाने पर अधिकारियों के होश-हवास ठीक हो गये। इसके पश्चात् अधिकारियों ने कहा कि बंगला रोमन लिपि में लिखी जायेगी। ऐसा नहीं किया गया। हाल में उन्होंने कुछ चुनी हुई जगहों में बंगला को अर्बी लिपि में लिखने का प्रयोग किया है। किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न अवश्य ही निष्फल होंगे।

मेरा यह निवेदन है कि भाषा का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि यदि आप केवल मतों अथवा आदेशों से उसके संबंध में निर्णय कर देंगे तो उससे उन लोगों के दिलों को गहरी चोट पहुंचेगी जिन्होंने उसे स्वेच्छा से स्वीकार नहीं किया होगा। वे दुखित हो उठेंगे और उसका परिणाम यह होगा कि सब कुछ विच्छिन्न हो जायेगा। श्रीमान्, मैं निराशावादी नहीं हूं किन्तु मेरी यह धारणा है कि यदि समझौता नहीं किया गया तो भाषा के संबंध में चाहे कोई भी निर्णय क्यों न किया जाये, उससे हम लोगों में अवश्य ही उत्तेजना फैलेगी। मैंने अपने माननीय मित्र श्री गोपालास्वामी आयंगर के तर्कसंगत किन्तु भावनाशून्य भाषण को सुना। उसमें एक वेदना छिपी थी किन्तु उससे यह दृढ़ निश्चय भी प्रकट होता था कि वे इतना ही आगे बढ़ने को तैयार हैं और इससे आगे नहीं बढ़ सकते। जब वे बोल रहे थे तो बीच में मैंने उनसे पूछा था, "श्रीमान्, क्या आपका विचार यह है कि हमें पूरे मसौदे को स्वीकार करना होगा अथवा क्या हम उसके कुछ अंशों को भी स्वीकार कर सकते हैं?" उन्होंने कहा, "जी नहीं, उसे आदि से अन्त तक एक ही समझना चाहिये।" उनका विचार यह है और मेरी समझ में यह ठीक ही विचार है कि

भाषा संबंधी उपबंधों का यह अध्याय या तो पूरा स्वीकार किया जाये या पूरा अस्वीकार कर दिया जाये। इसका अर्थ यह नहीं है कि यत्र-तत्र थोड़े बहुत परिवर्तन नहीं किये जा सकते। किन्तु यदि केवल पहले भाग को अर्थात् देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को स्वीकार किया जाता है और शेष अंश को अस्वीकार कर दिया जाता है तो हमें यह कदापि मान्य नहीं होगा। हिन्दी को इसी शर्त पर स्वीकार किया जा सकता है कि अन्य उपबन्धों को भी स्वीकार किया जाये। (वाह, वाह)

मैं स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं। श्रीमान्, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम एक प्रान्तीय भाषा को थोपने अथवा उसे राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने से जो प्रान्तीय विद्वेष तथा कटुता स्वभावतः फैलेगी उसे नहीं उत्पन्न होने देना चाहते तो हमें संस्कृत को स्वीकार करना चाहिये, जो सभी भाषाओं की जननी है और जो, मेरे विचार से, पर्याप्त प्रयत्न करने से पन्द्रह वर्ष में सीखी जा सकती है और जिसे सिखाने के लिये देश में इस समय भी आवश्यक सुविधायें तथा प्रबन्ध विद्यमान हैं। सम्भवतः उसे इस समय प्रयोग में लाना असम्भव प्रतीत हो—15 वर्ष में, इस पीढ़ी में सम्भवतः उसे प्रयोग में न लाया जा सके यद्यपि जो लोग उसे जानते हैं उसे अधिक प्रयोग करने लगें। किन्तु आने वाले पीढ़ी उसे सीख सकती है और उसे सभी प्रयोजनों के लिये प्रयोग में ला सकती है।

इसी बीच मैं यह नहीं चाहता कि देश का प्रशासन अयोग्यता से होने लगे। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी को ही देश की राज भाषा रहने दिया जाये। मैं यह जानता हूं कि जब मैं अन्यत्र अपने एक भाषण में इन्हीं विचारों को व्यक्त कर रहा था तो मेरी बड़ी आलोचना हुई थी। हिन्दी भाषी क्षेत्र के मेरे एक मित्र ने कहा, "देखिये, मैत्र, आप अगले पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी रहने देने के पक्ष में बड़े उत्साह से तर्क उपस्थित कर रहे हैं। आपका विचार क्या है? क्या आप उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब अंग्रेज वापस आ जायेंगे?" मैंने उनसे कहा कि हम अंग्रेजों से अंग्रेजों के प्रभुत्व से, क्रुद्ध थे। अंग्रेजी भाषा तथा संस्कृति से हमारा कोई द्वेष नहीं था। जब पिछली शताब्दी में अंग्रेज इस देश में पहले पहल आये तो अंग्रेजी भाषा को कोई नहीं समझ पाता था। लोग उसका एक शब्द भी नहीं जानते थे। यह कहा जाता है कि उन दिनों एक व्यापारिक संस्था में काम करने वाला बंगाली बाबू अपने अफसर के पास गया और उसने उससे कहा, "श्रीमान्, आज रथ यात्रा है, छुट्टी छुट्टी।" अफसर ने पूछा, "रथ क्या होता है?" अपनी टूटी फूटी अंग्रेजी में वह बाबू नहीं समझ सका कि रथ कैसा होता है और उसने कहा, "चर्च, चर्च, बुडन चर्च सर। जगन्नाथ सिटिंग, रोप एंड पुल सर।" बेचारा युरोपियन हक्का बक्का सा रह गया। आरम्भ में लोगों को इसी प्रकार की अंग्रेजी का ज्ञान था किन्तु बाद को राजा राम मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, बंकिम चन्द्र, रमेश दत्त तथा अन्य लोगों ने अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया। कुछ ही वर्षों पश्चात् कुमारी तोरू दत्त, माइकेल मुधुसूदन दत्त, और अन्य लोगों ने अंग्रेजी भाषा में बहुत ही सुन्दर पद्य तथा गद्य की रचना की। ये रचनायें अंग्रेजी साहित्य में उत्कृष्ट गीति-काव्य समझी जाती हैं। इसी प्रकार आरम्भ में कुछ कठिनाई हो सकती है किन्तु यदि आप परिश्रम करेंगे तो आप थोड़े ही समय में संस्कृत सीख सकते हैं। इस बीच वैज्ञानिक तथा उच्च कोटि की शिक्षा के लिये, तथा न्यायपालिका के कार्य के लिये, भारत में अंग्रेजी ही प्रयोग में आयेगी।

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

श्रीमान्, मुझे अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य से प्रेम है। अंग्रेजों के शासन-काल में जहां हमें मानहानि, कष्ट तथा दु:ख सहन करना पड़ा वहां हमने यह अनमोल रत्न भी प्राप्त किया। मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर ने कहा है कि इसी शस्त्र द्वारा हमने स्वराज्य भी प्राप्त किया। जब उन्होंने यह कहा तो मैंने देखा कि लोग हंस रहे थे। किन्तु क्या यह प्रस्ताव गम्भीरतापूर्वक रखा गया है कि इस देश से अंग्रेजी भाषा को पूर्णतया निकाल दिया जायेगा और हमारे भावी जीवन में उसका कोई हिस्सा नहीं रहेगा? यदि आज श्री कृष्णमाचारी अथवा मौलना अबुल कलाम आजाद, अथवा पंडित बालकृष्ण शर्मा और मुझे अंग्रेजी भाषा में नहीं बल्कि अपनी अपनी भाषाओं में आपस में वार्तालाप करना पड़े तो एक अजीब कोलाहल होने लगेगा। अंग्रेजी भाषा के कारण ही हम इस कोलाहल से बच सके हैं और एक दूसरे के निकट आ सके हैं। यदि इस देश से अंग्रेजी भाषा को निकालने का प्रयास किया गया तो भारत में फिर बर्बरता फैल जायेगी। हमें एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी अपनानी चाहिये अंग्रेजी एक ऐसी भाषा है जिसे साठ करोड़ लोग बोलते हैं। अंग्रेजी अब केवल अंग्रेजों की ही सम्पत्ति नहीं रह गई हैं वह उनकी सम्पत्ति भी है और मेरी सम्पत्ति भी। एक वायसराय ने "बाबूज इंग्लिश" नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें एक बहुत ही सुन्दर अध्याय है। अंग्रेज यह जानते हैं कि भारतीयों को अंग्रेजी भाषा का कितना वृहत ज्ञान है और वे यह भी जानते हैं कि भारतीय इस भाषा को कितना स्पष्ट और सही बोलते हैं। हमें यह ख्याति प्राप्त है। मुझे पन्द्रह वर्ष तक उच्च कोटि के अंग्रेजों से मिलने जुलने का अनुभव है। मैं यह देखता था कि पहले की विधान-सभा के यूरोपियन सदस्य अंग्रेजी भाषा पर हमारे अधिकार की प्रशंसा करते थे, वे प्राय: कहते थे, "हमें आश्चर्य होता है कि आप लोग गृहमंत्री अथवा रेल मंत्री के भाषण को सुनने के पश्चात् तुरन्त ही किस प्रकार आलोचना करने लगते हैं। हम यह नहीं कर सकते। हमें इस आलोचना के लिये तैयारी करने के लिये बहुत समय चाहिये।" इस प्रकार उन के ही क्षेत्र में हमने उन्हें पछाड़ा था। अंग्रेजी भाषा ने हमारे लिये विश्व के एक वृहत् ज्ञान भंडार के द्वार खोल दिये हैं, जो कई युगों के पश्चात् भरपूर हुआ है। यह हमारे लिये हितकर न होगा कि हम उसके द्वार अब बन्द कर दें। यदि अंग्रेजी रहेगी तो आप हिन्दी को और किसी भी प्रान्तीय भाषा को विकसित कर सकेंगे। भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा को अपने ढंग से स्वतंत्रता से विकसित होने दीजिये और अन्य भाषाओं से कई वस्तुओं को लेकर अपने-अपने भंडार को सुसम्पन्न बनाने दीजिये। यदि आप यह करना चाहते हैं तो आपको संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिये।

इस्राइल में क्या हो रहा है? अब चूंकि यहूदियों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है इसलिये उन्होंने इबरानी को ही अपने देश की राजभाषा बनाया है। वे अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता तथा अपनी परम्परा का आदर करना चाहते थे। अध्यक्ष महोदय, मैं इस उद्देश्य से यह संशोधन उपस्थित कर रहा हूं कि संस्कृत के अध्ययन से हमारे प्राचीन वैभव का पुनरावर्त्तन हो। हमें अपना संदेश पश्चिम को भी सुनाना चाहिये। पश्चिम भौतिकवाद की सभ्यता को अपनाये हुये है। हमें पश्चिम को गीता का, वेदों का, उपनिषदों तथा तंत्रों का और चरक तथा सश्रुत

आदि का संदेश सुनाना चाहिये। इन्हीं बातों के कारण संसार हमारा आदर करने लगेगा, न कि राजनैतिक वाद-विवादों अथवा वैज्ञानिक खोजों के कारण जो उनकी खोजों की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। रताध्वस्त पश्चिमी देशों में नैतिकता तथा धार्मिक अथवा आध्यात्मिक जीवन भी विनिष्ट हो गया है। और वे पथ प्रदर्शन के लिये आपकी ओर देख रहे हैं।

स्थिति यह है और इस स्थिति में संसार आपसे संदेश चाहता है। आप अपने दूतावासों द्वारा विदेशों को क्या संदेश देने जा रहे हैं। वे नहीं जानते हैं कि आपके राष्ट्रीय कवि कौन हैं, आपकी भाषा क्या है और आपके पूर्वजों ने किन विषयों में अद्वितीय उन्नति की थी।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अंकों के विषय में बहुत कम लोग यह जानते हैं कि संसार को भारत की क्या देन रही है। उसकी देन केवल अंकों के संबंध में ही नहीं है बल्कि बीजगणित, गणित-पदावली, दशमलव प्रणाली, त्रिकोणमिति आदि के संबंध में भी है। ये संसार को भारत की देन है। मद्रास के हमारे ख्यातनामा मित्र ने भारतीय दर्शन के अमोल रत्नों को लोक हितार्थ संसार के सामने रखा—मेरा मतलब विश्वविद्यालय आयोग के सभापति तथा मास्को में हमारे वर्तमान राजदूत से है जिन्हें हमारे उद्योग तथा रसद के मंत्री, डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी के पिता जी दक्षिण से लाये थे और जिन्हें उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान की थीं। यदि आप उस भाषा से परिचित नहीं हैं जो आपको अपने पूर्वजों से मिली है और जिसमें आपकी संस्कृति मूर्तिमान है, तो मैं कह नहीं सकता कि आप संसार को क्या भेंट करेंगे।

मैं कह नहीं सकता कि मेरी अपील का मेरे उत्तर भारत के अथवा दक्षिण भारत के मित्रों के हृदयों पर कुछ प्रभाव पड़ेगा या नहीं। आपको अपने पूर्वजों की भाषा संस्कृत का हृदय से सम्मान करना चाहिये। जब आज आपको आने वाली पीढ़ियों के भाग्य का निर्माण करने का अवसर मिला है तो क्या आपको अपने पूर्वजों की इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिये? हम कलह को छोड़कर उत्साह से संस्कृत को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा तथा राज-भाषा के रूप में स्वीकार करें। मेरा यह सच्चा विश्वास है कि यदि हम संस्कृत को स्वीकार कर लेंगे तो ये सब कठिनाइयां समाप्त हो जायेंगी तथा सभी विद्वेष तथा कटुता मिट जायेगी और लोगों के हृदयों में भी परिवर्तन हो जायेगा। निस्सन्देह, सम्भव है कि कुछ कठिनाई अनुभव हो किन्तु किसी के प्रभुत्व की, अथवा किसी के दलित होने की भावना बिल्कुल भी नहीं रह जायेगी। इसी विश्वास से मैं आपसे उस महान संस्कृति तथा सभ्यता के नाम पर जिसका हम सभी को गर्व है तथा उन महान् ऋषियों के नाम पर जिन्होंने इस भाषा को हमें दिया है, अपील करता हूं कि आप इस संशोधन का समर्थन करें। कम से कम एक बार तो संसार को बताइये कि हम भी अपनी आध्यात्मिक संस्कृति की सुसम्पन्न परम्परा का सम्मान करना जानते हैं।

***अध्यक्षः** मैं ऐसे व्यक्तियों को बुला रहा हूं जिन्होंने आधारभूत महत्व के संशोधनों की सूचना दी है। जब वे समाप्त कर चुकेंगे तब हम अन्य प्रश्नों को उठा सकते हैं। मि. एंथनी ने इस आशय के एक संशोधन की सूचना दी है कि

[अध्यक्ष]

किसी अन्य लिपि को न रखकर रोमन लिपि को रखा जाये। मेरे विचार से यह बहुत कुछ आधारभूत महत्व का संशोधन है।

***मि. फ्रैंक एंथनी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने दो संशोधनों की सूचना दी है। ये संशोधन आठवीं सूची में दिये हुये हैं और इनकी संख्या 338 और 347 है। पहला संशोधन इस प्रकार है:

"चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) में 'Devanagari Script (देवनागरी लिपि)' शब्दों के स्थान पर 'the Roman Script (रोमन लिपि)' शब्द रखे जायें।"

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 301-ग के वर्तमान परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये:

'Provided that no change shall be made in the medium of instruction of any State University or in the languages officially recognised in the law courts of a province or State without the previous sanction of Parliament.'"

(परन्तु बिना संसद की पहले स्वीकृति लिये हुये, किसी राज्य के किसी विश्वविद्यालय के शिक्षा के माध्यम, अथवा किसी प्रान्त अथवा राज्य के न्यायालयों में स्वीकृत भाषाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा।)

श्रीमान्, मैंने वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ही इन दो संशोधनों की सूचना दी है। मैंने जो निष्कर्ष निकाला है वह मेरा अपना निष्कर्ष है, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि वह वास्तविकता पर आधृत है और यह विश्वास भी है कि वह इस देश के अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक कल्याण के सिद्धान्त पर आधृत है।

श्रीमान्, इस विषय पर बोलते हुये, जो दुर्भाग्य से बहुत विवादग्रस्त विषय हो गया है, मैं आरम्भ में ही यह बता देना चाहता हूं कि मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सौभाग्य से मैं जबलपुर का निवासी हूं जो एक हिन्दी भाषी क्षेत्र है। मेरा यह भी सौभाग्य रहा है कि छोटी आयु से ही मैं देवनागरी लिपि में हिन्दी सीखता रहा हूं। मध्यप्रान्त में सामान्यत: अपराध के मामलों में गवाहों से हिन्दी में ही प्रति प्रश्न पूछे जाते हैं। हत्या के बीसों मामलों में अफसरों के सामने हिन्दी में ही तर्क उपस्थित करने होते हैं, क्योंकि वे अंग्रेजी नहीं जानते।

मैं आरम्भ में ही यह भी कहना चाहता हूं कि मैं इस सिद्धान्त को पूर्णतया स्वीकार करता हूं कि यदि भारत में वास्तविक अर्थ में एकता स्थापित करनी है

और राष्ट्रीय भावना जाग्रत करनी है तो हमारी एक राष्ट्र भाषा होनी चाहिये। इस तर्क को सभी को स्वीकार करना चाहिये। मेरी मातृभाषा अंग्रेजी है। चूंकि मैं भारतीय हूं और अंग्रेजी मेरी मातृ भाषा है इसलिये मेरी यह धारणा है कि अंग्रेजी एक भारतीय भाषा है। मुझसे पूर्व बोलने वाले माननीय सदस्य महोदय ने अभी कहा कि अंग्रेजी पर अंग्रेजों का ही एकाधिपत्य नहीं है। वह संसार के विभिन्न भागों के लोगों की या तो मातृ भाषा हो गई है या उन्होंने उसे अपना लिया है। यद्यपि अंगेजी मेरी मातृ-भाषा है, और यद्यपि मेरा यह दावा है कि अंग्रेजी एक भारतीय भाषा है, किन्तु मैं जानता हूं कि कई कारणों से अंग्रेजी इस देश की राष्ट्र भाषा नहीं हो सकती है।

साथ ही मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, यद्यपि मुझे इसका खेद है, कि अंग्रेजों के प्रति विद्वेष और प्रतिहिंसा का जो रुख अपनाया जा रहा है वह मेरी समझ में नहीं आता। जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री मैत्र ने कहा है, राजनीति के संबंध में यह समझ में आता है और यह ठीक भी प्रतीत होता है कि अंग्रेजों के प्रति कटुता रही हो तथा क्षोभ भी रहा हो। किन्तु हमें भ्रम में न पड़ना चाहिये और उलटे सीधे ढंग से विचार न करना चाहिये। अंग्रेजों के प्रति अपने क्रोध को हम अंग्रेजी भाषा पर न उतारें। जैसाकि उन्होंने कहा था, अंग्रेजी भी कुछ ही ऐसी सुन्दर चीजों में से एक है जिसे अंग्रेजों ने अकस्मात बिना अधिक सोचे-विचारे इस देश को प्रदान किया। अंग्रेजी के ज्ञान से भारतीयों के लिये साहित्य, विचार तथा संस्कृति के एक बहुत बड़े भंडार के द्वार खुल गये। मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी के प्रति इतनी कटुता का रुख क्यों अपनाया जा रहा है और उसे मिटा देने का प्रयास क्यों किया जा रहा है। यह जानबूझ कर लोगों को हानि पहुंचाना ही है। आखिर दो सौ वर्ष के काल में हमारे देशवासियों ने अंग्रेजी का जो ज्ञान प्राप्त किया है वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। मैं यह बिना किसी संकोच के कहता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत नेतृत्व का इसी कारण दावा कर सका है और इसी कारण उसे स्वीकार भी कर सका है कि विदेश में हमारे प्रतिनिधियों को आत्मविश्वास है और वे अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में अंग्रेजी में आत्मविश्वास से बोल सकते हैं।

श्रीमान्, एक समय इस देश की राष्ट्र-भाषा के संबंध में मुझे कुछ भी संदेह नहीं था। दुर्भाग्य से जो वाद-विवाद चल पड़ा है उसके आरम्भ होने के पूर्व मैं बिना किसी सन्देह के यह माने हुए था कि हिन्दी ही इस देश की राष्ट्र-भाषा होगी। उस समय किसी लिपि के प्रति मेरा कोई विशेष रुझान नहीं था। सौभाग्य से मैं देवनागरी लिपि जानता हूं। वह संसार की बहुत सरल लिपियों में से एक है। इस दुखद वाद-विवाद के चलने के पूर्व मैं बिना किसी संकोच के देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लेता। किन्तु आज मेरा विचार बदल गया है। मैं किसी को दु:ख पहुंचाना नहीं चाहता। किन्तु मैं यह कहूंगा, कि हमारे उन मित्रों ने, जिन्होंने बड़े उत्साह से और बहुत कुछ कट्टरपंथी से हिन्दी का समर्थन किया है, हिन्दी को अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत हानि पहुंचाई है। वे भले ही यह न कहें किन्तु अन्य अहिन्दी प्रदेशों के लोगों ने उनके कार्यों में, भाषणों में तथा उनके रुख में कट्टरपंथी की असहिष्णुता ही देखी। उन्होंने अपनी कट्टरपंथी तथा असहिष्णुता से बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया है। जिसके परिणामस्वरूप जो भाषा स्वभावत: इस देश की राष्ट्र-भाषा स्वीकार की जाती उसका

[मि. फ्रैंक एंथनी]

विरोध होने लगा है। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि, चूंकि उस महत्वपूर्ण विषय के संबंध में दुर्भाग्य से बड़ी सरगर्मी और असहिष्णुता उत्पन्न हो गई है इसलिये यह आवश्यक है कि हिन्दी के स्वरूप तथा विस्तार की परिभाषा की जाये। मैं एक हिन्दी भाषी प्रान्त का निवासी हूं। इस विवाद के आरम्भ होने के पूर्व हम जानते थे कि हिन्दी का एक स्वरूप है और वह स्वरूप किसी साहित्यिक की हिन्दी का स्वरूप नहीं है बल्कि एक साधारण आदमी की हिन्दी का स्वरूप है। आज हम क्या देखते हैं? कट्टरपंथी तथा धर्मांधता की भावना से ही शोधन की प्रक्रिया आरम्भ की गई है। जब तक इस भाषा की परिभाषा नहीं की जाती, मेरी यह धारणा है कि इस धर्मांधता के आन्दोलन में साधारण हिन्दुओं तथा जन साधारण पर एक दुर्बोध तथा नवीन संस्कृतनिष्ठ हिन्दी थोप दी जायेगी। ऐसी भाषाओं के विरुद्ध, जो संस्कृत अथवा हिन्दी से नहीं निकली हैं, एक प्रकार की प्रतिहिंसा बरती जा रही है। साधारण भाषा को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा है। आज कल 'सबेरा' शब्द सम्भवत: इसलिये काम में नहीं लाया जाता कि वह उर्दू का शब्द है और हमारे मित्र "प्रात:काल" बोलते हैं। जब मैं अपने नौकर से प्रात:काल कहता हूं तो वह नहीं समझता कि मैं क्या कह रहा हूं। एक विद्यार्थी ने मुझसे कहा कि उसे बराबर यह पंक्ति रटाई जाती है: "हिन्दी के विरुद्ध भाषण देने से साम्प्रदायिक भावना उत्पन्न होती है"।

हम अपने लोगों पर इस प्रकार की हिन्दी को थोपने का प्रयास कर रहे हैं। यदि आप अपने हिन्दी में लिखे हुए संविधान को ही देखेंगे तो आप बता सकेंगे कि कितने हिन्दी-भाषी हिन्दू ही उसे समझ सकते हैं। मैंने तथाकथित हिन्दी अनुवाद को पढ़ने का प्रयास किया किन्तु चार वाक्यों में मैं एक शब्द को भी नहीं समझ सका। मैंने अपने कई कोषों को निकाल कर भी देखा किन्तु ये अपरिचित शब्द कोषों में भी नहीं मिलते। आप मुझसे कैसे आशा करते हैं कि मैं एक ही दिन में हिन्दी के इस नवीन स्वरूप से परिचित हो जाऊंगा? इसलिये मेरे विचार से यह आवश्यक है कि हम इस भाषा की परिभाषा करें।

यदि हम इस अवसर पर राष्ट्र-भाषा के संबंध में जल्दबाजी तथा असहिष्णुता से निर्णय करेंगे तो उससे हिन्दी-भाषी हिन्दू ही अकारण बहुत बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे। जब मैं जबलपुर अपने घर जाता हूं तो हिन्दी भाषी हिन्दू लड़के ही आकर मुझसे शिकायतें करते हैं:

> "नागपुर विश्वविद्यालय की जल्दबाजी की नीति से हमारा जीवन ही खराब हो रहा है। हम दसवीं कक्षा तक पहले निकलते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने घरों में हम हिन्दी ही बोलते हैं किन्तु हम अभी इस कोटि की हिन्दी नहीं सीख पाये हैं कि पहली श्रेणी में उपाधि प्राप्त कर सकें। नागपुर विश्वविद्यालय में एकाएक हिन्दी में काम होने लगा है।"

यदि हिन्दी-भाषी हिन्दुओं को ही इतनी कठिनाई हो रही है तो इसकी कल्पना की जा सकती है कि मध्यप्रान्त में भाषा पर आधृत अल्पसंख्यकों की क्या दशा

होगी। आप उन्हें एकाएक निरक्षर बना दे रहे हैं। इस पर भी आप ऐहिक लोकतंत्र की दुहाई देते हैं। एक ओर आप अवसर-समता की चर्चा करते हैं और दूसरी ओर आप एकाएक ऐसी नीतियों को प्रयोग में लाते हैं जिनसे अवसर-समता के सिद्धान्त का ही हनन होता है।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे इस विषय पर इतने जोश के साथ बोलना पड़ रहा है। इसका कारण यही है कि इस संबंध में मेरी प्रबल धारणा है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, इस संबंध में मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है। मुझे अपने मित्रों के उद्देश्यों पर कोई आपत्ति नहीं है, और मैं समझता हूं कि उनके उद्देश्य सच्चे उद्देश्य हैं, किन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जिन लोगों को उनसे मतभेद है वे उनकी सच्चाई का अर्थ कुछ दूसरा ही लगाते हैं। उनकी यह धारणा है कि उनकी इस कट्टरपंथी और असहिष्णुता के पीछे उनका कुत्सित साम्प्रदायिक उद्देश्य छिपा हुआ है और चाहे उनका यह लक्ष्य हो या न हो किन्तु इससे ऐहिक राज्य का आदर्श मिट्टी में मिल जायेगा। यह मेरी समझ में नहीं आता। आपको डर किस चीज़ का है? आप में से कुछ लोग पिछले दो सौ वर्षों के दासत्व को नहीं भूल पाये हैं। जैसाकि मेरे मित्र पंडित मैत्र ने कहा है, भाषा एक सजीव तथा सक्रिय वस्तु है। आप उसे एक ही सांचे में नहीं ढाल सकते। आप कृत्रिम रूप से भाषा के विकसित तथा अनुप्राणित होने की प्रक्रिया नहीं निश्चित कर सकते हैं। हम क्या करने का प्रयास कर रहे हैं? आपको यह डर लगा हुआ है कि हिन्दू अब इतने अशक्त हो गये हैं कि वे अब अपनी ही संस्कृति तथा अपनी ही भाषा का खण्डन कर देंगे। ताकि हिन्दू अपनी भाषा को विकसित करने में अपनी संस्कृति का खण्डन न करें, आप एक ठोस सूत्र रख देना चाहते हैं। यह मेरी समझ में नहीं आता। आपको डर किसका है। हिन्दी अवश्य ही स्वाभाविक रूप से विकसित होकर राष्ट्र-भाषा के स्वरूप को प्राप्त होगी और उसके इस विकास में बाधा कौन डाल सकता है? श्रीमान्, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यह रुख उन कुछ अंग्रेजों के रुख के समान ही है जो एक सुबह एकाएक जागकर रोमण आक्रमण का और उससे उत्पन्न हुई कटुता का स्मरण करने लगें और अंग्रेजी से लैटिन के सभी शब्दों को निकाल बाहर करने के लिये एक आन्दोलन चलायें। अंग्रेजी से लैटिन के सभी शब्दों को निकालने के आन्दोलन में और हिन्दी से उर्दू और फारसी के सभी घुले मिले शब्दों को निकालने के आन्दोलन में कोई अन्तर नहीं है।

मैं अपने मुसलमान मित्रों के पक्ष का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मैंने उनके पक्ष का तथा मुस्लिम लीग की राजनीति का कभी भी समर्थन नहीं किया, किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि किसी भी भाषा का विकास प्राकृतिक धाराओं से होता है और मेरे मित्र इन प्राकृतिक धाराओं को न तो रोक सकते हैं और न उन्हें शिथिल ही कर सकते हैं। चाहे आप इसे पसंद करें या नापसंद, हिन्दी में बाहर से शब्द लिये जायेंगे और सम्भवत: आपके इस रुख के कारण सभी भाषाओं से लिये जायेंगे। मुझे इसका खेद है कि किसी कारण से, यद्यपि यह तर्कयुक्त कारण नहीं है,—कम से कम मेरे विचार से तर्कयुक्त कारण नहीं है—आपने अंग्रेजी को उन भाषाओं की सूची में नहीं रखा है, जिनसे हिन्दी के लिये शब्द लिये जा सकते हैं। यह किस तर्कयुक्त कारण के आधार पर किया गया है सिवाय इसके

कि इस अवसर पर भी आपके हृदय में अंग्रेजों के प्रति जो घृणा है वह जाग उठी है? आखिर यदि आज कल आप किसी अच्छे पढ़े लिखे हिन्दू से वार्तालाप करेंगे तो वह कई अंग्रेजी शब्दों को प्रयोग करेगा क्योंकि वे हिन्दी भाषा में घुल मिल गये हैं। किन्तु फिर भी किसी तर्कयुक्त कारण से नहीं, बल्कि मैं कहूंगा कट्टरपंथी से और तर्कशून्यता से, अंग्रेजी को उन चौदह भाषाओं की सूची से मनमाने तौर पर, निकाल दिया गया है, जिनसे हिन्दी के लिये शब्द रखे जा सकते हैं।

मैंने रोमन लिपि सहित हिन्दी-विषयक इस संशोधन को इस कारण प्रस्तुत किया है कि वस्तुस्थिति को देखते हुए और देश के हितों को ध्यान में रखते हुए मेरी यह धारणा है कि हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। मुझे यह विदित है कि देश के इस समय के वातावरण के कारण तथा सभा के वर्तमान रुख के कारण भावनावश अथवा प्रतिक्रियावश हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे। यह न समझा जाये कि मैं किसी को दु:ख पहुंचाना चाहता हूं, किन्तु मैं यह अवश्य पूछना चाहता हूं कि आखिर लिपि किस प्रकार पवित्र होती है। यदि देवनागरी लिपि हिन्दी-भाषी हिन्दुओं के लिये पवित्र है तो इस संबंध में भारत में एकरूपता कैसे आ सकती है और अन्य लोगों से यह कैसे कहा जा सकता है कि वे अपनी मातृ-भाषाओं अर्थात् प्रान्तीय भाषाओं की लिपियों को छोड़ कर देवनागरी लिपि को अपनायें?

मेरी यह धारणा है कि यदि हममें साहस तथा कल्पना का अभाव नहीं है तो हम रोमन लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें। कई कारणों से इस पर विचार किया जाना चाहिये। और इसके पक्ष में निर्णय करना चाहिये। बीस लाख जवानों को युद्ध काल में तीन-चार वर्ष में ही रोमन लिपि द्वारा हिन्दी में साक्षर बनाया गया था। यदि हम रोमन लिपि को स्वीकार कर लेंगे तो हम भारतीय एकता तथा राष्ट्रीय एकता के पथ पर बहुत आगे बढ़ जायेंगे। मुझे विश्वास है कि यदि हम हिन्दी के लिये रोमन लिपि को स्वीकार कर लेंगे तो प्रान्तीय भाषाओं के लिये भी उसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इससे आप तुरन्त ही प्रान्तों के आपस के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषा-संबंधी व्यवहार को बहुत आगे बढ़ा देंगे।

किन्तु जैसाकि मैं कह चुका हूं इसके लिये साहस और कल्पना की आवश्यकता है। इसके लिये आवश्यकता है भावना और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के वश में न आने की और उनका विरोध करने की। मैं कह नहीं सकता कि यह किया जायेगा या नहीं। मेरा यह विचार है कि हम प्रादेशिकता के हित में बहुत रियायत कर रहे हैं, यद्यपि मेरे मित्र शंकर राव देव मेरे इस विचार से सहमत नहीं होंगे और एक सीमा तक मैं स्वयं उनसे सहमत हूं। मैं यह जानता हूं कि विभिन्न प्रान्तों के लोगों की अपनी मातृ-भाषाओं के संबंध में कैसी प्रबल धारणायें हैं। यह स्वाभाविक ही है। यह स्वाभाविक ही है कि तामिल, तेलगू, बंगला और गुजराती सुसम्पन्न होंगी और पूर्ण रूप से विकसित होंगी किन्तु मेरा यह विचार करना भी स्वाभाविक है कि हम भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को एक सीमा तक ही व्यक्त करते हैं तथा इसके नाते को भी एक सीमा तक ही लगाते हैं—केवल उसी सीमा तक जो हमें हितकर प्रतीत होती है। किन्तु जब हमें वह हितकर नहीं प्रतीत होने लगती तो हम एक ऐसी नीति के पक्ष में तर्क उपस्थित करने लगते हैं जिसका विकास होने पर देश का अवश्य ही खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

केवल वही व्यक्ति जो जानबूझ कर बेईमानी करना चाहता हो यह तर्क उपस्थित करेगा कि जिस लड़के ने अपनी प्राथमिक तथा माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा बंगला में प्राप्त की होगी वह हिन्दी का भी आदर कर सकेगा। यदि हम राष्ट्र भाषा में वास्तव में दिलचस्पी रखते हैं तो हमारे हितों को जो क्षति होती है उसे हम सब सहन करें। मद्रासी, बंगला और गुजराती सभी तथा हिन्दी भी राष्ट्रीय एकता के लिये क्षति सहन करे। इसी कारण मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है। मैं यह कहता हूं कि बिना संसद की पहले से मंजूरी लिये हुए विश्वविद्यालयों को शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन न करना चाहिये। और न्यायालयों की भाषा में भी बिना संसद की मंजूरी के परिवर्तन न करना चाहिये। मैंने परामर्श देने के उद्देश्य से ही इस संशोधन को उपस्थित किया है।

अब मैं न्यायालयों के प्रश्न को उठाता हूं। आपने केवल उच्च न्यायालयों के संबंध में व्यवस्था की है। अन्य न्यायालयों में क्या होगा? यदि कल किसी प्रान्त की अथवा राज्य की भाषा प्रयोग में लाई जायेगी, और यह निश्चित ही है कि कुछ प्रान्तों में वह तुरंत ही प्रयोग में लाई जायेगी, तो क्या होगा? सत्र न्यायालयों में, उदाहरणार्थ मध्यप्रान्त में, मद्रासी न्यायाधीश क्या करेंगे? क्या आप इन लोगों से यह कहने जा रहे हैं कि वे अपने विचारपूर्ण निर्णयों को जिनमें विधि का निर्वचन भी किया जाता है, हिन्दी में लिखें? यह बहुत ही अजीब बात होगी। उनका निर्वचन करने तथा अंग्रेजी में अनुवाद करने की आवश्यकता होगी ताकि उच्च न्यायालय उन अनुवादित निर्णयों पर विचार कर सकें। और अपना निर्णय सुना सकें। निर्वचन होते समय इन निर्णयों की शक्ति तथा गठन बहुत कुछ भंग हो जायेगा। यदि मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे यह निश्चित हो जायेगा कि प्रत्येक प्रान्त में प्राकृतिक विकास के अनुसार ही परिवर्तन होंगे। इसका अवश्य ही यह परिणाम होगा कि केन्द्र में ही नहीं बल्कि प्रान्तों में भी राष्ट्र-भाषा प्रत्येक क्षेत्र में समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगी।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह सच नहीं है कि आज कल संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में अधीन न्यायालय उर्दू में निर्णय सुनाते हैं और उच्च न्यायालयों के विचारार्थ उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है?

***मि. फ्रैंक एंथनी:** मैं इस संबंध में कुछ नहीं जानता।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** अब हिन्दी को स्वीकार किया गया है किन्तु अभी तक संयुक्तप्रान्त, बिहार और पंजाब में अधीन न्यायालय निर्णय उर्दू में सुनाते थे।

***मि. फ्रैंक एंथनी:** मुझे बिहार के बारे में जानकारी है क्योंकि मैंने वहां सत्र न्यायालयों के सामने तर्क उपस्थित किये हैं। वहां अंग्रेजी प्रयोग में आती है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** मेरा मतलब यह है कि सत्र न्यायालयों के उपयोग के लिये लेखों का अनुवाद किया जाता है।

***मि. फ्रैंक एंथनी:** जैसाकि मैं कह चुका हूं, कई वर्षों से सभी न्यायालयों में एक प्रकार का कार्य स्थानीय अथवा प्रान्तीय भाषाओं में किया जा रहा है।

अभियुक्त की परीक्षा मातृभाषा में ही होती है। कुछ लेखों को हिन्दी में ही रखा जाता है। मैं उस आधारभूत कार्य की चर्चा कर रहा हूं जिसे अधीन न्यायालय भी करते हैं, जैसेकि सत्र न्यायालयों का निर्णय लिखना। मेरी यह धारणा है कि यदि किसी प्रकार का परिवर्तन करना ही है तो उसे इस अवसर पर नहीं करना चाहिये। परिवर्तन बाद में उस समय किया जा सकता है जब हमें विश्वास हो जायेगा कि हमारे न्यायाधीशों को हिन्दी का इतना ज्ञान है कि वे उस भाषा में निर्णयों को सुन्दर विश्लेषणात्मक शैली में उसी प्रकार लिख सकते हैं जैसे वे अंग्रेजी में लिख सकते हैं।

श्रीमान्, मेरे विचार से रोमन लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने के संबंध में और बिना पहले संसद की मंजूरी लिये हुए किसी प्रान्त में, किसी विश्वविद्यालय अथवा किसी न्यायालय की भाषा अथवा भाषाओं में परिवर्तन न किये जाने के संबंध में मैं अपने तर्कों को उपस्थित कर चुका हूं। श्रीमान्, मैं अपना प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** वक्ताओं के चुनने में मुझे बहुत कठिनाई हो रही है। हमारे सामने कई संशोधन हैं—गिनने पर मुझे ज्ञात हुआ है कि संशोधनों के प्रस्तावकों की संख्या साठ या इससे कुछ अधिक है। यदि मैं उन नामों को गिनूं जो संशोधनों के साथ दिये गये हैं तो उनकी संख्या सौ से भी अधिक होगी। इस स्थिति में वक्ताओं को चुनने में मेरे लिये बहुत कठिनाई हो रही है। अभी तक मैंने ऐसे लोगों को बोलने के लिए बुलाया है जिनके संशोधन बहुत कुछ आधारभूत महत्व के थे। किन्तु थोड़ी देर बाद ऐसे लोग नहीं रह जायेंगे और मेरे लिये वक्ताओं को चुनना कठिन हो जायेगा। जिस किसी सदस्य ने किसी संशोधन की सूचना दी है वह यह समझता है कि उसके संशोधन का समर्थन होना चाहिये और उसे बोलने का अवसर मिलना चाहिये। जिन लोगों ने संशोधनों की सूचना नहीं दी है वे भी यह समझते हैं कि उन्हें बोलने का अवसर मिलना चाहिये। सभा के सभी सदस्य इन दो श्रेणियों में से किसी न किसी श्रेणी के हैं। मैं चाहता हूं कि इस विषय में सभा मेरा पथप्रदर्शन करे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसका अर्थ केवल यह है कि इस बहस के लिए पहले जितना समय रखा गया था उससे उसमें कुछ अधिक समय लगेगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह सुझाव है कि प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि बोलने के लिये बुलाये जायें। हमारे यहां लोगों के दो वर्ग हैं, एक तो वे जो हिन्दी-भाषी प्रान्तों के हैं और एक वे जो हिन्दी-भाषी प्रान्तों के नहीं हैं। दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है। किसी अवसर पर सम्भव है हम कोई ऐसा समझौता कर लेंगे जिससे सभी को संतोष होगा। इसलिये उचित यह होगा कि बोलने के लिये एक दो मद्रास के लोग बुलाये जायें और इसी प्रकार से मध्यप्रान्त से और अन्य प्रान्तों से बुलाये जायें। आखिर सभी का दृष्टिकोण बहुत अंश में एक समान ही है।

***अध्यक्ष:** सौभाग्य से मतभेद का आधार प्रान्तीय नहीं है।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान्, क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि जो प्रान्त हिन्दी भाषी नहीं हैं उनके प्रतिनिधियों को बोलने का अधिक अवसर दिया जाये यदि केवल हिन्दी-भाषी लोगों को अपने पक्ष का विज्ञापन करने का अवसर दिया गया.....

***अध्यक्ष:** यदि माननीय सदस्य महोदय जिस समय से यह बहस आरम्भ हुई है तब से इस सभा में उपस्थित होते और उन्होंने वक्ताओं के नाम गिने होते, तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि अभी तक हिन्दी-भाषी वक्ताओं की संख्या अन्य लोगों की अपेक्षा कम रही है।

***श्री राम सहाय** (मध्य भारत): मेरा निवेदन है कि हिन्दी के मामले में स्टेट के नुमाइन्दों को अपने ख्यालात इजहार करने का मौका दिया जाये।

अध्यक्ष: स्टेट की हिन्दी में और दूसरी जगह की हिन्दी में क्या कोई अन्तर है?

श्री राम सहाय: नहीं, एक ही चीज है, मगर इंटरस्ट्स, आवश्यकताएं, समस्यायें अलग-अलग हैं।

अध्यक्ष: मैंने यह समझ लिया है कि हर एक प्रान्त का ख्याल रखकर और सब चीजों का ख्याल रखकर मैं जितना मौका होगा सबको दूंगा। मगर यह बात गैर-मुमकिन है कि सब आदमियों को मौका मिले। मैं नहीं जानता कि कब तक इस पर बहस चलती रहेगी।

माननीय सदस्य: कल तक।

अध्यक्ष: मैं कह नहीं सकता कि सभा इस विषय पर कब तक विचार करना चाहेगी।

पहले टाइम लिमिट मुकर्रर कर दिया गया था मगर वह बात नहीं रही। मैं हर आदमी को 15 मिनट और 20 मिनट देने की कोशिश करता हूं और ज्यादा और कम भी कर सकता हूं। मगर मैं इस बात की कोशिश करता हूं कि कोई आदमी इधर उधर की बातें न कहे। जो बात बोले मौजूं बोले। जब मैं देखता हूं कि कोई आदमी असंगत बोलता है तो मैं उसको रोकने की कोशिश करता हूं और रोक देता हूं। इसलिये मुझे समय को देखते हुए रोकने में दिक्कत पड़ती है, इस बात का ख्याल हर एक मेम्बर को ध्यान में रखना चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** क्या आप कृपा करके कल तक बहस को जारी न रखेंगे क्योंकि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है?

***अध्यक्ष:** यह सभा पर निर्भर है। हम इस प्रश्न पर आज अन्त में विचार करेंगे।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** जब तक किसी एक सूत्र के संबंध में सभी सहमत न हो जायें तब तक बहस चलती रहे।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): वक्ताओं के चुनने की जिस प्रणाली के संबंध में आपने निर्णय किया है, उसको ध्यान में रखते हुए क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या सभा के सदस्य आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिये खड़े होते रहें अथवा आप स्वयं उनका नाम पुकारेंगे।

***अध्यक्षः** वे मेरा ध्यान आकृष्ट करने के लिये खड़े होते रहें और इस बीच मैं चुन भी लूंगा।

***एक माननीय सदस्यः** मेरा यह सुझाव है कि पांच या दस मिनट की काल-सीमा भी निश्चित कर दी जाये।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से हमें अपने भाषणों को सीमित करना होगा।

***पं. गोविन्द मालवीय** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): आपने जो कुछ कहा है उसे ध्यान में रखते हुए अर्थात् इसे ध्यान में रखते हुए कि आप किसी वक्ता को कोई अप्रासंगिक बात नहीं कहने देंगे, मेरे विचार से काल-सीमा का प्रश्न नहीं उठता। यदि किसी वक्ता के दो मिनट बोलने के पश्चात् आप यह देखें कि वह अप्रासंगिक बातें कर रहा है तो या तो उससे विषय पर आने के लिये कहा जा सकता है या अपना भाषण समाप्त करने के लिये कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह कहना है कि यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है और सभा के प्रत्येक सदस्य की इसमें इतनी अधिक दिलचस्पी है कि यह नहीं कहा जा सकता कि इस बहस को एक दिन दिया जाये, अथवा आधा दिन, अथवा दो दिन, अथवा इससे भी अधिक समय। जब तक इस विषय के संबंध में कोई नया तर्क अथवा नया दृष्टिकोण उपस्थित किया जा सकता है यह आपके ही स्वविवेक पर निर्भर है कि बहस कितने समय तक चले। यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि मेरे विचार से आप स्वविवेक से जहां तक हो सके इस बहस को चलने दें।

***अध्यक्षः** जी हां, आप इसे मेरे स्वविवेक पर छोड़ दें।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): भाषा-प्रश्न के लिये दो दिन दिये गये थे और विभिन्न प्रान्तों से अधिकांश सदस्य यही धारणा बना कर आये हैं कि यह बहस केवल दो दिन तक चलेगी। इसलिये मेरे विचार से यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस बहस को आज सायंकाल समाप्त कर दिया जाये और तत्पश्चात् इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** केवल इसी कारण बहस नहीं समाप्त की जा सकती। सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे पूरे सत्र तक सभा में रहेंगे।

काज़ी सैय्यद करीमुद्दीन (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): जनाब सदर, मेरे नाम जो तरमीमें हैं। पहली तरमीम यह है:

"That in amendment No. 65 of fourth List, for the proposed New Part XIV-A, the following be substituted:—

301 A.—The Parliament by law provide the National language of the Union within six months after the election of the Parliament on the basis of adult Franchise.'"

(चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन भाग 14-क के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

''301 क–प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर संसद का निर्वाचन होने के छह महीने के अन्दर संसद विधि द्वारा राष्ट्र-भाषा को निर्धारित करे।')

और दूसरी तरमीम यह है कि अगर यह मंजूर न हो तो हिन्दुस्तान की नेशनल लैंग्वेज हिन्दुस्तानी होनी चाहिये। जनाब सदर, जो फिजा इस वक्त पैदा हो गई है उसमें मैं नहीं समझ सकता कि आया मेरी तरमीम मंजूर होगी या नहीं होगी। लेकिन जैसा कि गालिब ने कहा है "तमाशा ऐ अहले करम देखते हैं"।

हमको यह नहीं देखना है कि आप इसको मंजूर करते हैं या नहीं करते हैं। हमें यह देखना है कि जो पोजीशन यहां पर सन् 1947 में थी क्या वही अब भी है या उसमें कुछ कमी बशी वाकै हुई है और अगर हुई है तो क्यों ऐसा हुआ है।

आज यहां पर यह कहा जाता है कि मुसलमान यहां पर कम्यूनल इलैक्शन पर आये हैं तो इस बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि सन् 47 से कब्ल जो हिन्दुस्तान में जनरल इलैक्शन हुआ है वह सब कम्यूनल बेसिस पर हुआ है। मुसलमानों का इलैक्शन भी कम्यूनल बेसिस पर हुआ है और कांग्रेस के जो मेम्बर इलेक्ट हुए हैं वे भी कम्यूनल बेसिस पर हुए हैं और ऐसी फिज़ा होने की वजह से ही इस वक्त जज़बात इतने उभरे हुए हैं। मि. धुलेकर ने अभी-अभी कह दिया है कि उर्दू मुसलमानों की जबान नहीं है लेकिन हमारे जज़बात इस वक्त बहुत भड़क गये हैं, आप हमसे दो साल के बाद उर्दू या फारसी की मांग कर लें तो वह मंजूर की जायेगी। लेकिन इस वक्त इस बात की कोई गुंजाइश नहीं है कि इस मांग को पूरा किया जाये। जनाब सदर, मैंने इसी वजह से अपनी तरमीम पेश की है। अगर यह इस फिजा में इस बात को नहीं सोच सकते हैं तो जब हिन्दी हिन्दुस्तान की जबान मुकर्रर हो जाये तब यह कैसे इस बात को सोच सकेंगे। तो मेरी गुजारिश यह है कि जब जनरल इलैक्शन हो जाये और सब हिन्दू मुसलमान मेम्बर ज्वाइंट इलेक्टोरेट के जरिये से यहां के पार्लियामेंट में मेम्बर होकर आ जायें उस वक्त अगर वह पार्लियामेंट यहां की जबान के मामले का फैसला कर दे तो वह निहायत ही मुनासिब होगा बजाय इसके कि इस मामले को इस वक्त

मौजूदा फिज़ा में फैसला किया जाये। हो सकता है कि अब जो फैसला किया जायेगा वह कुछ सूबों को मंजूर न हो और कुछ दीगर लोगों को मंजूर न हो, ऐसा करना मुनासिब नहीं है।

जनाब सदर, मौजूदा तरज़ेअमल अख्तियार किये जाने की सबसे बड़ी भारी वजह यह है कि सन् 1947 के बाद पाकिस्तान ने अपने मुल्क में उर्दू जबान को नेशनल जबान करार दिया है और हो सकता है कि उसी की रियेक्शन की वजह से यहां हिन्दुस्तान में हिन्दी जबान को मुकर्रर किया जा रहा है और वह भी देवनागरी रस्मुलखत में।

जनाब सेठ गोविन्द दास साहब ने कुछ मेम्बरों के नाम बताये हैं जो कि इसके हक में दस्तखत कर गये थे। लेकिन बाद में वह बदल गये हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि जो हिन्दी और देवनागरी के हक में थे वह क्या तमाम के तमाम कांग्रेस के मेम्बर नहीं हैं? उन्होंने कुर्बानियां की हैं और उनकी जातें कुर्बानी से वाबस्ता हैं और अगर यह हिन्दी को देवनागरी रम्मुलखत में करना चाहते हैं तो क्या वह कांग्रेस की क्रीड के मुताबिक है। जो मेम्बरान दस्तखत करने के बाद बदल गये हैं। वह चूंकि कांग्रेस की क्रीड को कबूल कर चुके हैं इसलिये उन्होंने ऐसा करना मुनासिब ख्याल किया है और बदल गये हैं। कांग्रेस ने तो यह मान लिया था कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी जबान दोनों देवनागरी और उर्दू रस्मुलखत में रायज़ होंगी। अगर आज महात्मा गांधी जिन्दा होते तो वह देखते कि कांग्रेस एक रौक की तरह इस मामले में खड़ी होती है ताकि दोनों रस्मुलखत यहां मुकर्रर किये जायें।

मेरे दोस्त मि. धुलेकर ने कहा कि गांधी जी ने हिन्दुस्तानी देवनागरी और उर्दू जबान में अपीजमेंट की वजह से कहा था। तो क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि जो कुछ भी कांग्रेस करती है वह सिर्फ अपीजमेंट की वजह से करती है और यह जो यहां पर सिकुलर स्टेट कायम किया गया है वह भी अपीजमेंट की वजह से किया गया है? मैं यह कहूंगा कि जितने भी सैक्शन यहां हिन्दुस्तान में रहते हैं यह उन सबका मुल्क है और उनको इस मुल्क में रहने का हक़ है और अगर गांधी जी ने इस बात को कायम किया था कि हिन्दुस्तान की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी, जो कि दोनों उर्दू और देवनागरी रस्मुलखत में लिखी जायेंगी, और कांग्रेस ने भी इस बात को तस्लीम किया था जो आज इसको बदलने के लिये कहा यह जाता है कि यह सब अपीज़मेंट के लिये किया गया था। मैं सेठ गोविन्द दास की यादाश्त के लिये उनकी तवज्जुह उनकी ही अपनी ही तकरीर की तरफ दिलाना चाहता हूं जो कि उन्होंने सन् 1945 में बजट के मौके पर की थी और यह कहा था कि मुझे बहुत ही अफसोस है कि मैं अपनी तकरीर हिन्दुस्तानी में नहीं कर सकता हूं। क्या वह इस बात को सिर्फ तीन साल ही मैं भूल गये? सन् 1945 में उनकी नेशनल ज़बान हिन्दुस्तानी थी और आज देवनागरी रस्मुलखत में हिन्दी हो गई है। क्या उनसे मैं पूछ सकता हूं कि आज उनके पास इस बात का क्या जवाब है? सन् 1947 में इंडियन नेशनल कांग्रेस ने यह कबूल किया था कि हिन्दुस्तान की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी जिसके दोनों उर्दू और देवनागरी रस्मुलखत होंगे। लेकिन आज यह फ़रमाया जाता है कि सिर्फ देवनागरी रस्मुलखत होगा। उसकी वजह यह है, जैसकि मैं बता चुका हूं, सन् 1947 के पार्टीशन के

बाद पाकिस्तान ने अपनी नेशनल ज़बान उर्दू होने का ऐलान किया और उसी को रियेक्शन की वजह से आज यहां हिन्दुस्तान में हिन्दी और देवनागरी रस्मुलखत मुकर्रर किया जा रहा है। इस बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर आप देवनागरी रस्मुलखत रखते हैं तो उसके साथ-साथ उर्दू रस्मुलखत भी रखिये।

हिन्दुस्तान के चार करोड़ मुसलमानों को यू.पी., बिहार और बरार के मुसलमानों को लीजिये। वह अपनी तालीम, अपनी मादरी ज़बान, यानी उर्दू में पा रहे हैं और अगर आज आप यहां की नेशनल लैंग्वेज हिन्दी कर देंगे तो क्या यह मुमकिन हो सकता है कि वह मुसलमान सरकारी नौकरियां हासिल कर सकें। जैसे कि आप दूसरी ज़बान को पांच या दस साल की मुद्दत दे रहे हैं, वैसे आप इसको खत्म करने में कोई वक्त नहीं दे रहे हैं और हिन्दी रस्मुलखत को मुकर्रर कर रहे हैं। मैं हिन्दी के खिलाफ नहीं हूं। लेकिन जब यहां की ज़बान हिन्दुस्तानी है तो उर्दू के बारे में इस कदर नफ़रत क्यों जाहिर की जाती है।

आपने खुद ही इस बात को मान लिया है कि अंग्रेजी दस या पन्द्रह बरस तक यहां की ज़बान रहेगी। लेकिन यू.पी., बिहार और बरार और तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमानों के राइट्स को नज़रअन्दाज़ करके आप उर्दू रस्मुलखत को खत्म कर देना चाहते हैं और इस रेजोल्यूशन के जरिये से और अपनी मैजोरिटी के ज़रिये से आप इसको एकदम खत्म और बन्द करना चाहते हैं। यह क्यों हो रहा है वह इसलिये कि मेरी दानिस्त में यह जज़बात की वजह से हो रहा है। यह सेंटीमेंट की वजह से है। यह रियेक्शन की वजह से है।

पं. गोविन्द मालवीय (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह कौन कहता है?

काजी सैयद करीमुद्दीनः यह रेजुलेशन कहता है।

पं. गोविन्द मालवीयः कहां।

काज़ी सैयद करीमुद्दीनः रस्मुलखत देवनागरी हो यह इसका पहला कलाज है। यू.पी. में कई हज़ारहा गवर्नमेंट सर्वेंट मुसलमान ऐसे हैं जो फक्त उर्दू जानते हैं। अगर आपने नेशनल लैंग्वेज देवनागरी कर दी तो मुमकिन नहीं है कि मुसलमान नौकरी कर सकें। जब तक आप दस साल का वक्त मुकर्रर न करें तब तक वह अच्छी तरह हिन्दी नहीं सीख सकते। यह मेरी दरख्वास्त है। मैं हाउस से कहना चाहता हूं कि जिस चीज को आपने सन् 1947 तक कबूल किया था और महात्मा जी का इशारा था, बल्कि वह कहते थे कि मैं इसके लिये लड़ूंगा तो आज जो महात्मा जी के पैरोकार हैं वह उनकी बात न मानकर एकदम से हिन्दुस्तानी को छोड़ कर उसके उर्दू के रस्मुलखत को बन्द करने का क्या मतलब है। इसके लिये जो धुलेकर जी ने अपनी राय दी है उसके अलावा और कोई वजह नहीं हो सकती है।

सेठ गोविन्द दास जी ने कहा कि उर्दू न मानने की एक वजह यह है कि इसको जब हम पढ़ते हैं तो उसमें रुस्तम और सोहराब का जिक्र निकलता है। इसके लिये मैं यह कहता हूं कि जब यहां की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी और रस्मुलखत उर्दू और देवनागरी दोनों होंगे तो क्या हिन्दुस्तान के लीडर्स के नाम का इनमें जिक्र न होगा और अगर हम अंग्रेजी ज़बान को पंद्रह साल के लिये रखते हैं तो क्या उसमें हिन्दुस्तान पर जुल्म करने वाले लार्ड क्लाइव और वारिन हैसटिंगज़ का ज़िक्र नहीं आता है। तो अगर रुस्तम और सोहराब के नाम जो कि पारसी हैं अगर उर्दू भाषा में आते हैं तो उस ग्राउंड पर आप उसको दूर करते हैं तो मेरे ख्याल में यह काफी वजह नहीं है।

उन्होंने यह कहा कि कोई मुल्क और देश ऐसा नहीं कि जहां एक कलचर और एक ज़बान न हो और उन्होंने मिसाल रूस की दी। मेरी समझ में रूस की तारीख सेठ जी ने नहीं पढ़ी है। वहां सोलह ज़बानें हैं। जिन्होंने रूस की मिसाल दी है उन्होंने आपकी बात को काट दिया है। वहां पर जो रेज़ोल्यूशन और गज़ट छपते हैं तो वहां की सोलह ज़बानों में छपते हैं। आज हमको एक-दम से कानून के जरिये से, मजारिटी के जरिये से यह पास करते हैं कि नेशनल लैंग्वेज देवनागरी स्कृष्ट हो उर्दू न हो। मेरी दानिस्त में यह एक इन्तहाई जुल्म होगा और यह मिसाल पेश करना कि रूस में एक जबान है सरासर गलती है।

दूसरी बात, जैसे कि हमारे जब्बलपुर के मेम्बर ने कहा है, कि जिस तरह से हिन्दी लिखी जा रही है और बोली जा रही है, मालूम होता है कि इसके लिये एक इंटरप्रेटर की जरूरत पड़ेगी। अगर आज सपरू साहब जिन्दा होते तो यही कहते जैसाकि उन्होंने पहले फरमाया था कि अगर हिन्दी का यही लै लो निहार रहा तो वह जमाना दूर नहीं जबकि हिन्दी के लिये एक इंटरप्रेटर की जरूरत पड़ेगी।

तो मैं कहता हूं कि एक सलीस जबान जिसको हिन्दू मुसलमान सब जाति के लोग अच्छी तरह से समझते हैं और जिसमें सब अपने ख्यालात और जज़बात का इज़हार कर सकते हैं वह ज़बान इन दोनों के मिलने से ही हो सकती है और जिसका नाम हिन्दुस्तानी है। मैं उम्मीद करता हूं कि इन उसूलों पर गौर करते हुए जो महात्मा गांधी जी ने बयान किये थे, और महात्मा जी की फोटू आपके सामने है, वह आपकी तरफ देख रहे हैं कि आप इन पर कायम हैं या नहीं, इन पर गौर करते हुए आप इसका फैसला करें और जज़बात में गायब होकर दूसरी बात न करें।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): माननीय सभापति जी, मैं उत्कल का आदमी होते हुए भी राष्ट्र भाषा हिन्दी होनी चाहिये इस बारे में मैं पूरी सम्मति देता हूं। जो रेजोल्यूशन हम लोगों के सामने है उस पर बहुत विचार किया गया है और विचार करके इस प्रस्ताव को बनाया गया है। इसीलिये मैं इसका साधारण तौर से समर्थन करता हूं। समर्थन करते हुए भी जिस बारे में मैंने अपनी अमेंडमेंट दी है उसके बारे में भी मैं कुछ कहूंगा। पहले तो हमें यह देखना चाहिये कि यह झगड़ा क्या होता है कि भारतवर्ष में राष्ट्र भाषा होनी चाहिये या नहीं। अभी

तक कोई-कोई कहते हैं कि राष्ट्रभाषा हम नहीं मानते हैं, इसको आफीशियल लैंग्वेज मानते हैं। यह बहुत दु:ख की बात है। जब हम भारतवर्ष को एक राष्ट्र समझते हैं और बनाने के लिये कोशिश करते हैं तब तो आफीशियल लैंग्वेज क्यों इसको नेशनल लैंग्वेज भी बोलना चाहिये। फिर यह राष्ट्र-भाषा होते हुए भी प्रत्येक प्रदेश में जो भाषा है उन भाषाओं में परिवर्तन करने के लिए कोई नहीं कहता हैं इसीलिये मैंने एक संशोधन का प्रस्ताव दिया है कि जब पांच वर्ष के बाद या दस वर्ष के बाद एक कमेटी या कमीशन बैठकर हिन्दी भाषा को मजबूत करने के लिए कोशिश करेगी तो उसके साथ-साथ प्रत्येक प्रान्तीय भाषा को मजबूत करने के लिए भी कुछ ख्याल रखा जाये। हर एक प्रान्त और हर एक प्रान्तीय भाषा जब दृढ़ हो जायेगी तो हमारी राष्ट्रीय भाषा भी दृढ़ हो जायेगी।

कोई-कोई कहते हैं कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कुछ फर्क है और कोई कहते हैं कि कुछ फर्क नहीं है। मैं तो इस बात की इसीलिये चिन्ता करता हूं कि आपके ब्रेन है और उस ब्रेन की एक कैपेसिटी रहती है कि वह कितने शब्द ग्रहण कर सकेगा। उसको कुछ असीम शक्ति नहीं है। इसलिये दुनिया में जितने शब्द डिक्शनरी में आते है हर एक आदमी उन डिक्शनरी के सब शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकता। इस कारण हम लोगों को थोड़े शब्द ग्रहण करने हैं और थोड़े शब्द जो बोलते हैं उनको फेंक देना है। हर एक भाषा में भी यह बात होती है। आप लोग इस बात को देखिये कि संस्कृत भाषा सब प्रान्तीय भाषाओं की जननी है। और संस्कृत भाषा में जितने शब्द हैं उन शब्दों से हम जो शब्द किसी काम के लिये लेना चाहते हैं तो वह शब्द मिल जाता है। लेकिन हम उस शब्द का प्रयोग नहीं करते। मैं एक शब्द के लिए आप से कहता हूं। हम लोग उड़ीसा में "पवन" शब्द बोलते हैं। संस्कृत में भी यही शब्द है "पवन"। अर्थ "हवा"। लेकिन यह शब्द प्रचलित नहीं होता है। बंगला में पवन कोई नहीं समझता है। इसलिये मैं कहता हूं कि जब हम राष्ट्र-भाषा हिन्दी बनावेंगे तो वह ठीक है कि थोड़े शब्द हम फेंक देंगे।

और हिन्दी भाषा को जब हम ग्रहण करते हैं तो उसका साहित्य भी ग्रहण करते हैं। हिन्दी भाषा को ग्रहण करके हम उसके साहित्य को फेंक दें ऐसा नहीं होगा। इसलिये जब हम हिन्दी को आफीशियल लैंग्वेज मानते हैं तो हिन्दी के साथ उसका जो साहित्य है उसको भी हमें ग्रहण करना चाहिये। ऐसा नहीं कि ऐसी हिन्दी बनावें कि जो शब्द हों सब सरल ही हों और भारत के सब आदमी उसको सरलता से समझ सकें। ऐसा नहीं होगा। और जब हम लोग अंग्रेजी बोलते हैं, तो हम लोगों का क्या ख्याल रहता है कि अच्छी तरह से अंग्रेजी बोलें यह नहीं है कि जैसी भी हो बोल कर छुट्टी करें। तो जैसी भी हो, हम राष्ट्रीय भाषा बनायेंगे, यह ख्याल भी ठीक नहीं है। हां यह ठीक है कि हिन्दी मे जब शब्द भंडार पूर्ण नहीं है, तो दूसरी दूसरी भाषाओं में जो शब्द हैं, उन शब्दों को लेकर हिन्दी भाषा की समृद्धि करनी चाहिये। इसलिये कमीशन बनाते हैं और कमेटी बिठाते हैं, मैं इसका स्पष्ट समर्थन करता हूं। कोई सज्जन एक अमेंडमेंट लाये हैं कि राष्ट्र-भाषा भी हो सकती है। वैसे तो मैं भी कह सकता हूं कि उड़िया भाषा भी हो सकती है। उड़िया भाषा मेरी बंगाली के मुकाबिले बहुत प्राचीन है। जब उड़िया भाषा भाषा के रूप में दिखाई दिया तब बंगला भाषा का जन्म नहीं

हुआ था। इसी तरह से दक्षिण के मेरे भाई कहेंगे कि उनकी भाषा बहुत प्राचीन है। यह सब ठीक नहीं होता है। यह प्राचीन और अल्पप्राचीन का सवाल नहीं है। हिन्दी और देवनागरी को जब हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं और वह होना चाहिये तो उसके साथ-साथ हमें यह भी ख्याल रखना चाहिये कि दूसरी प्रान्तीय भाषायें भी अपनी जगह उन्नति कर सकें। उनकी प्रगति उससे रुके नहीं।

यहां एक बात और मैं कहना चाहता हूं कि अंग्रेजी का जो मोह है, वह कुछ लोगों में इतना है कि वह समझते हैं कि जब अंग्रेजी नहीं होगी तो हम मर जायेंगे। यह तो ऐसा ही हुआ कि शराब पीना बन्द हो जाये तो कुछ लोग मर जायेंगे, जो उनको दारू पीने को नहीं मिलेगा। अगर अंग्रेजी जाने से कुछ थोड़े आदमी मर जाते हैं तो क्या हुआ। हमें तो सारे राष्ट्र और देश का हित ध्यान में रखकर कदम उठाना चाहिये। और अगर ऐसा करने से कुछ थोड़े से आदमियों को असुविधा भी होती है, तो भी उन्हें उसको ग्रहण कर लेना चाहिये। एक झगड़ा यहां पर न्यूमरल्स का पैदा हो गया है कि आया इंटरनेशनल फार्म की गिनतियां रहें, या देवनागरी के रहें। दस करोड़ आदमी हमारे दक्षिण के भाई अड़ गये हैं कि हम और सब तो मान लेते हैं लेकिन यह नहीं मानेंगे, तो क्या किया जाये। उनको तो इसमें जिद हो गई है, तो दुनिया तो सिर्फ युक्ति से नहीं चलती भावप्रवणता भी है। तो हमें ही बाहर के न्यूमरल्स मान लेना चाहिये। रहा संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने के बारे में सुझाव। अगर सारे दक्षिण के भाई और सब लोग संस्कृत को मान लेते हैं तो मेरा कोई हर्जा नहीं है, मैं भी उसको मान लूंगा। डर भी होता है कि संस्कृत भाषा बहुत कठिन है, उसको पढ़ने में बहुत समय लग जायेगा, तब तो दूसरी बात है। हिन्दी भाषा भाषी देश में ज्यादा तादाद में है, और इसलिये हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिये। लेकिन हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने से यह न हो जाये कि प्रान्तों की भिन्न-भिन्न भाषायें उनका साहित्य वगैरह लुप्त हो जाये। हर एक प्रान्तीय भाषा की रक्षा होनी चाहिये। और जो कमीशन या कमेटी बने उसको इस तरफ अपना ध्यान रखना चाहिये और ज्यादा न कहकर मैं आखिर में इतना ही कहूंगा कि जो आदमी कहते हैं कि रोमन केरेक्टर अगर अपनाया जाये, तो बहुत अच्छा होगा, वह यह नहीं समझते हैं कि स्क्रिप्ट कैसे बनती है। वह भाषा का जो स्वर होता है, वह स्वर जो प्रकट करने के लिए होता है, उससे स्क्रिप्ट बनती है। रोमन केरेक्टर में हिन्दी भाषा को लिखने से वह समझ में नहीं आती है, और उसमें ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि रोमन स्क्रिप्ट एकदम अग्रहणीय है। वह तो इतनी भद्दी और उसकी साइंटिफिक बेसिस ही नहीं है। देवनागरी से लिखी जाने वाली हिन्दी साइंटिफिक है और उसे ही ग्रहण कर लेना चाहिये।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता। कल और आज प्रातः मैंने इस सभा में जो कुछ सुना और इन तीन सौ पचास संशोधनों की सूची में जिसमें दुर्भाग्य से एक संशोधन मेरे नाम से भी है, मैंने जो कुछ देखा उसकी ओर ध्यान देते हुए मैं सभा से अपील करता हूं कि वह समयोचित कदम उठा कर इस विवाद को समाप्त कर दें।

श्रीमान्, इस संशोधनों के विभिन्न उद्देश्य हैं और जहां एक ओर संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने को कहा गया है तो वहां दूसरी ओर अंग्रेजी को कम से कम एक शताब्दी तक रहने देने के लिये कहा गया हैं मेरी यह धारणा है कि जिस जिम्मेदारी से हमने इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल किया है उसी जिम्मेदारी का इस संबंध में भी परिचय देने के लिये हम अपील करें।

मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगार ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया है उसका विश्लेषण करने पर मुझे विश्वास हो गया है कि वर्तमान स्थिति में यही सबसे उपयुक्त प्रस्ताव है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस स्थिति में यही प्रस्ताव न्यायोचित है। किन्तु हमें सभी प्रश्नों को तुरन्त ही हल करने की आकांक्षा नहीं होनी चाहिये। हमें कुछ प्रश्नों को दस पन्द्रह वर्ष पश्चात् आने वाली पीढ़ी के लिये छोड़ देना चाहिये। मैं यह देखता हूं कि इस प्रस्ताव के फलस्वरूप हमारे सामने कुछ मोटी मोटी बातें तथा कुछ सिद्धान्त आते हैं। पहली बात यह है कि इस संबंध में अधिकांश लोग सहमत हैं कि हिन्दी संघ की राजभाषा होनी चाहिये। मेरे विचार से इस प्रकार की घोषणा करके हमने एक बहुत बड़ी बात हासिल की है। देवनागरी लिपि को स्वीकार करने के संबंध में जो प्रस्ताव है वह भी एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव है। मेरी दृष्टि से सारे संघ में राजभाषा के लिये एक ही लिपि स्वीकार करना भी एक बहुत बड़ी बात है।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव से मुझे आदान-प्रदान की भावना का भी परिचय मिलता है, क्योंकि इसमें पन्द्रह वर्ष का जो समय रखा गया है उस काल में वे लोग भी जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उस भाषा को सीख लेंगे अथवा उसका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

आखिर विभिन्न संशोधनों से तथा भाषाओं से यही प्रकट होता है कि मतभेद केवल अंकों के संबंध में है। यदि हम देश की एकता को अंकों की बलि-वेदी पर चढ़ा देंगे तो यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। इसलिये मैं अपने हिन्दी भाषी मित्रों से, जिनसे मैं सिद्धान्ततः सहमत हूं, व्यावहारिक व्यवहारवादी होने के नाते, क्योंकि किसी व्यक्ति ने मुझे राजनीतिज्ञ भी कहा है, अपील करता हूं कि कुछ बातें अगली पीढ़ी के लिये भी छोड़ दी जायें। अगली पीढ़ी अंकों के प्रश्न को हल करे। मेरे विचार से यह कोई ऐसी कठिन समस्या नहीं है कि हल ही न हो सके। यदि सद्भाव हो तो वह हल हो सकती है। किन्तु इस समय बहुत उत्तेजना है और लोगों का प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये इस समय चाहे जो भी प्रयत्न किये जायेंगे उनसे दो पक्षों का मतभेद मिटेगा नहीं, बल्कि उलटे बढ़ेगा। इसलिये मैं अपने आदरणीय मित्र श्री पुरुषोत्तम दास टंडन से अपील करता हूं कि वे एक बड़े भाई के समान इसे हल करने के लिये अपनी ओर से कोई कदम उठायें। यह एक निश्चित बात है कि हिन्दी एक प्रान्तीय भाषा है।

***अध्यक्षः** मैं वक्ता महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे किसी व्यक्ति के संबंध में कुछ न कहें। इससे वह व्यक्ति कठिनाई में पड़ जाता है।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल:** मैं आपके निर्णय को स्वीकार करता हूं और मैं चाहता हूं कि इस प्रकार की जो चर्चा मैंने की है उसे वाद-विवाद के विवरण से निकाल दिया जाये। आखिर हिन्दी है प्रान्तीय भाषा ही। कई भाषाऐं ऐसी हैं जिनका साहित्य बहुत बढ़ा चढ़ा है किन्तु फिर भी हमने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी भाषी लोगों ने यह भी एक बहुत बड़ी बात हासिल की है। यदि आप यह चाहते हैं कि अन्य लोग भी उसे स्वीकार करें तो उसका उपाय यह नहीं है कि आप उन्हें अपनी संख्या से प्रभावित करें। उसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि आप उन्हें राजी करें और स्थिति को होशियारी से सम्हालें। यदि अगले दस या पन्द्रह वर्षों में हिन्दी-भाषी लोग अन्य भाषा-भाषी लोगों के बीच अनेक साधनों द्वारा प्रचार करें तो मुझे कुछ भी संदेह नहीं है कि जिन लोगों ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेजी सीखी थी वह हिन्दी भी सीख लेंगे।

आखिर कोई भी ऐसा भारतीय नहीं है जो यह पूछने पर कि वह अंग्रेजी अपनाने के लिए तैयार है या किसी भारतीय भाषा को जो उसकी मातृभाषा भी हो सकती है, यह कहेगा कि वह अंग्रेजी अपनाने को तैयार है। इसलिये हिन्दी-भाषी लोग पहले के समान आशा और विश्वास के साथ कार्य करें और अन्य बातों को प्रचार द्वारा लोगों को मजबूर न करके बल्कि उन्हें राजी करके हासिल करें। जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है उसमें ही आजकल की प्रचार प्रणाली से कहीं अच्छी प्रचार प्रणाली निर्धारित की गई है और उससे हिन्दी-भाषी लोगों के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

पिछले तीन वर्षों में हमने देखा है कि किसी भी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में मतविभाजन नहीं हुआ है और इस प्रकार उसके संबंध में निर्णय नहीं किया गया है। हम इस परिपाटी को भंग न करें। संसार को यह विदित हो जाये कि सभी ऐसे महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में, जो इस संविधान के आधार-स्तम्भ हैं, इस सभा में एकमत से निर्णय किये गये। यदि विचाराधीन विषय के संबंध में भी एक मत से निर्णय किया गया तो किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न नहीं होगी। जैसाकि मैं कह चुका हूं, यदि हिन्दी-भाषी लोग जिनका इस देश में बहुमत है और सम्भवत: इस सभा में भी बहुमत है, इसके लिए कोई कदम उठायें तो मेरे विचार से, इस के लिये इतिहास में उनकी प्रशंसा की जायेगी। मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता किन्तु आशा करता हूं कि सभा मेरे सुझावों को स्वीकार कर लेगी।

***श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियार** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, दाक्षणात्यों के लिये यह एक बहुत ही कठिन समस्या है। दक्षिण के लिये यह प्रश्न जीवन और मृत्यु का है और यह आवश्यक है कि इसे यथोचित रूप से हल किया जाये। श्रीमान्, यहां जो निर्णय किया जायेगा उसे लेकर दक्षिण के प्रतिनिधियों को अपने लोगों के सामने जाना होगा और आप समझ सकते हैं कि उसका क्या महत्व होगा। उत्तर भारत के मेरे मित्रों ने मुझे बताया है कि यदि वे अंकों के मामले में झुके तो मतदाता उनकी आलोचना करेंगे और जब वे चुनाव में खड़े होंगे तो उनका जीवन संकट में पड़ जायेगा। जब हम अपनी भाषाओं को छोड़कर और उत्तर की भाषा को अपना कर अपने प्रान्तों में अपने निर्वाचकों के सामने जायेंगे तो हमारी क्या दशा होगी? इन लोगों को इसकी चिन्ता नहीं है कि हम किस स्थिति में पड़ जायेंगे। श्रीमान्, हिन्दी-भाषी लोग जिस देश-भक्ति

और दृढ़ता से अपने निर्णयों को प्रयोग में ला रहे हैं उसकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं किन्तु उन्हें यह भी समझना होगा कि इस प्रकार की देश-भक्ति हममें भी है, हममें भी अपनी भाषा, अपने साहित्य आदि के लिये भक्ति तथा प्रेम है।

आखिर स्थिति क्या है? हमारे क्षेत्रों की भाषायें हिन्दी से अधिक विकसित हैं और उनका साहित्य भी हिन्दी के साहित्य से अधिक वृहत् है। यदि हम हिन्दी को स्वीकार करने जा रहे हैं तो वह इस कारण नहीं कि वह उत्कृष्ट भाषा है, इस कारण नहीं कि वह सबसे अधिक सुसम्पन्न है, इस कारण नहीं कि संस्कृत के समान वह अन्य भाषाओं की जननी है। इस प्रकार की कोई बात नहीं है। हम उसे केवल इस कारण स्वीकार करने जा रहे हैं कि बहुत से लोगों की भाषा हिन्दी है। यह बात भी नहीं है कि इस देश के अधिकांश लोग हिन्दी भाषी है। केवल बात इतनी है कि भारत में जो भाषायें बोली जाती हैं उनमें से हिन्दी बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है। केवल इसी आधार पर यह दावा किया जा रहा है कि हिन्दी को सारे देश की राज-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। श्रीमान्, व्यवहारवादी होने के कारण हम यह दावा नहीं करते कि हमारी भाषाओं को स्वीकार किया जाये, भले ही वे अधिक विकसित हों, अधिक प्राचीन हों, तथा उनका साहित्य अधिक श्रेष्ठ हो और वे करोड़ों वर्षों से प्रचलन में रही हों।

***अध्यक्षः** क्या मैं सदस्यों से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे विभिन्न भाषाओं के साहित्यों की तुलना न करें। मैं कह नहीं सकता कि सभा में कोई सदस्य ऐसा भी है जो इस देश में प्रचलित सभी भाषाओं के साहित्य से परिचित है। जब कोई सदस्य यह कहता है कि उसकी भाषा का साहित्य अमुक-अमुक भाषा के साहित्य से अधिक श्रेष्ठ है तो वह एक ऐसे तर्क का प्रतिपादन करता है जो स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के तर्क से इस प्रश्न को हल करने में कोई सहायता नहीं मिलती। हम ऐसे तर्कों तक ही सीमित रहें जो सामान्यतः स्वीकार किये जा सकते हैं और ऐसे विवादों में न पड़ें जिनसे हम दूर रह सकते हैं।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): जब तक तुलना न की जायेगी तब तक अपने पक्ष का समर्थन कैसे किया जा सकता है?

***अध्यक्षः** आप हृदय में इसका निश्चय कर लें किन्तु इसे कहें नहीं।

***प्रो. एन.जी. रंगाः** मेरे विचार से यह युक्तियुक्त नहीं है।

***श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियारः** चाहे जो भी हो मैं यह कह रहा था कि हिन्दी का दावा उसके साहित्य उसकी प्राचीनता आदि पर नहीं आधृत है। श्रीमान्, इस स्थिति में मैं चाहता हूं कि यहां बैठे हुए हिन्दी-भाषी भाई इस पर विचार करें कि क्या यह उचित है कि वे जो कुछ चाहते हैं उसका दावा करें क्योंकि यदि हम दक्षिण के लोग उनके सभी दावों को स्वीकार करेंगे तो हम एक संकटपूर्ण स्थिति में पड़ जायेंगे। मैं यह चाहता हूं कि वे इस प्रश्न पर विचार करें और गम्भीरता से विचार करें।

[श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार]

श्रीमान्, जैसाकि मैं कह चुका हूं, जिस स्थिति में हम इस समय हैं उसके कारण हमने नागरी लिपि सहित हिन्दी को राज-भाषा मान लिया है। किन्तु मैं यह कह चुका हूं कि आप राष्ट्रभाषा शब्दों को प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि जिस प्रकार अंग्रेजी अथवा अन्य कोई भाषा हमारे लिये राष्ट्र-भाषा नहीं है उसी प्रकार हिन्दी भी राष्ट्र-भाषा नहीं है। हमारी अपनी भाषायें हैं जो राष्ट्र-भाषायें हैं और वे हमें उतनी ही प्रिय हैं जितनी प्रिय हिन्दी-भाषी लोगों को अपनी भाषा है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, हम हिन्दी को तथा नागरी लिपि को राज-भाषा और राजलिपि के रूप में स्वीकार करने के लिये इसलिये सहमत हुए कि उस भाषा को भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक लोग बोलते हैं। यदि केवल इस कारण आप यह कहना चाहते हैं कि कल ही से परिवर्तन कर दिया जाये और कल ही से हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जाये तो मेरे विचार से लोगों को यह मान्य नहीं होगा। नैराश्य फैलने के अतिरिक्त इसका और भी बुरा परिणाम होगा।

मैं यह कहना चाहता हूं कि दक्षिण के लोग हताश हो रहे हैं। दक्षिण में शायद ही कहीं स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना का परिचय मिले। श्रीमान्, जब हम देश के सबसे उत्तर में इस राजधानी में आते हैं तो हम यह अनुभव करते हैं कि हम परदेशी हैं और हममें यह भावना उत्पन्न नहीं होती कि सारा राष्ट्र और सारा देश हमारा ही है। जब तक दक्षिण के लोगों को यह समझाने का प्रयास नहीं किया जाता कि इस देश से उनका भी संबंध है और देश में एक प्रकार की एकता है, मेरे विचार से दक्षिण के लोगों को संतोष नहीं होगा। उनके हृदयों में कटुता रह ही जायेगी और यह इस समय नहीं कहा जा सकता कि इसका परिणाम क्या होगा।

मैं यह कहने आया हूं कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों में एक प्रश्न भारत की राजधानी भी है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। कभी-कभी लोग इस पर हंसते हैं। वे इस प्रश्न की गम्भीरता को नहीं समझते। जब किसी व्यक्ति को दो हजार मील की दूरी तय करके यहां काम करने आना होता है तो यह स्वाभाविक ही है कि वह यह समझता है कि वह अपनी भूमि में नहीं है। वह यह समझता है कि वह परदेश में आया हुआ है। दिल्ली के सामाजिक जीवन में कितने मद्रासी भाग लेते हैं, मैं यह पूछता हूं। मैं यहां पिछले दो तीन वर्षों से हूं। मैं दिल्ली के अथवा संयुक्तप्रान्त के बहुत कम लोगों को जानता हूं। स्थिति यह है। जब तक दक्षिण को कुछ सुविधायें नहीं दी जायेंगी, जब तक राजधानी किसी ऐसी जगह नहीं बनाई जाये जहां लोग आसानी से आ सकते हैं, और जिसे संयुक्तप्रान्त अथवा पंजाब के लोग अपना प्रदेश न समझें, तब तक दक्षिण के लोगों की यह धारणा न मिटेगी कि वे परदेश जा रहे हैं। हाल में यह कहा गया था कि मद्रासी ऊंची ऊंची जगहों पर हैं। इससे क्या यह प्रकट होता है कि यहां किसी अंश में भी राष्ट्रीयता है? यदि पंजाबियों को और यू.पी. वालों को उन जगहों पर रहने की योग्यता नहीं है तो इन पर मद्रासी क्यों न रहें? आखिर जब आपका यह दावा है कि पिछले दो वर्षों में आपने उन्नति की है, तो क्या उन लोगों ने उसमें कुछ भी योग नहीं दिया है जो ऊंची जगहों पर हैं? श्रीमान्, इस प्रकार की बातों से एकता स्थापित नहीं होगी।

यह भाषा का प्रश्न राजधानी, पदों आदि के प्रश्नों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यदि आप किसी चीज को थोपना चाहते हैं और यह भावना उत्पन्न करते हैं कि आप उसे अन्य लोगों पर थोपने जा रहे हैं, तो चाहे आप वास्तव में थोपने जा रहे हैं या न जा रहे हों और, जैसा कि किसी व्यक्ति ने कहा था चाहे वह हमारे लिये कदम उठाना स्वाभाविक ही था और उसके अतिरिक्त हम और कुछ कर भी नहीं सकते थे किन्तु फिर भी यदि यह भावना न रही कि उत्तर भारत दक्षिण भारत पर कोई चीज थोप रहा है तो इसका परिणाम बहुत कटु होगा। उत्तर भारत के अपने मित्रों से मैं यह नहीं कहना चाहता कि सब कुछ अव्यवस्थित हो जायेगा। किन्तु मेरे विचार से उन्हें यह अवश्य ही समझना चाहिये कि जब हम एक साथ रहना चाहते हैं और एक ही राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो इसे एक दूसरे का ध्यान रखकर व्यवस्था करनी चाहिये। और हमें किसी ऐसी चीज को ऐसे लोगों पर थोपने का प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिये जो उसे नहीं स्वीकार करना चाहते हैं अथवा जिनके स्वीकार करने के संबंध में संदेह है।

आखिर हमने काहे की मांग की है? हमने यह मांग की है कि हमें तैयारी करने के लिये समय दिया जाये। हमारी यही सबसे पहली मांग थी। दूसरे पक्ष के नेता इसके लिये सहमत हो गये। उन्होंने कहा कि वे तैयारी के लिये पन्द्रह वर्ष दे देंगे। मसौदे में क्या कहा गया है? मसौदे में यह बात उलट दी गयी है। पहले खंड में कहा गया है कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी प्रयोग की जाती रहेगी। दूसरे खंड में कहा गया है कि पांच वर्ष के पश्चात् एक आयोग अथवा एक समिति नियुक्त की जायेगी और वह समिति सिफारिश करेगी कि किन प्रयोजनों के लिये हिन्दी प्रयोग की जा सकती है और राष्ट्रपति तदनुसार आदेश देगा। इसका अर्थ क्या है? कम से कम उन विषयों के संबंध में जिनके बारे में आदेश दिया जायेगा, पन्द्रह वर्ष की अवधि को कम करके पांच वर्ष की अवधि रख दी गई है। इसके अतिरिक्त आप कहते हैं कि दस वर्ष के पश्चात् एक और आयोग नियुक्त होगा और वह आयोग एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और उस प्रतिवेदन के आधार पर आदेश दिये जायेंगे। इसका अर्थ क्या है? आपका यह केवल कथन मात्र है कि आप पन्द्रह वर्ष दे रहे हैं किन्तु पांच वर्ष के पश्चात् और दस वर्ष के पश्चात् आप हिन्दी प्रयोग में लाने जा रहे हैं जिसका अवश्य ही यह परिणाम होगा कि हममें से वे लोग जो प्रशासन में, शासन में, विधान-मंडल में तथा अन्यत्र किसी जगह पर नहीं होंगे वे अपना हिस्सा न पा सकेंगे क्योंकि तब तक वे तैयारी नहीं कर सकेंगे। मसौदे के पहले भाग में आशा बंधाई गई है किन्तु दूसरे भाग में उस आशा का भी निराकरण कर दिया गया है और हमें केवल पत्थर ही पत्थर दिये गये हैं।

मैं कह नहीं सकता कि यह मसौदा किसने बनाया है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि उसका प्रस्ताव श्री गोपालस्वामी आयंगर ने उपस्थित किया है। किन्तु जब तक पन्द्रह वर्ष की अवधि वास्तविक नहीं बनाई जाती और इन समितियों और आयोगों तथा पांच और दस वर्ष पश्चात् होने वाले परिवर्तनों के कारण भ्रामक बनाई जाती है तब तक कम से कम मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं। हम दक्षिण के लोगों का मुख्यतः इन्हीं बातों से संबंध रहेगा।

[श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार]

सम्भवत: दक्षिण ही इस देश का एक ऐसा भाग है जो समझता है कि वह तुरंत ही अन्य प्रान्तों के स्तर पर नहीं आ सकेगा, विशेषत: मेरा प्रदेश तो यही समझता है क्योंकि वहां तामिल बोली जाती है। हमें इसका गर्व रहा है कि हमारा संस्कृत से कोई संबंध नहीं रहा है। हमारा यह दावा नहीं है। कि तामिल संस्कृत से निकली है अथवा वह संस्कृत पर किसी प्रकार आधृत है। हम अपनी शब्दावली को यथासम्भव विशुद्ध रखने का प्रयास करते रहे है और हमने उसमें संस्कृत के शब्दों को नहीं मिलने दिया है। अब हमें अपने इस रवैये को छोड़ना है। हमें संस्कृत से शब्द लेने हैं और अपनी कार्यप्रणाली ही बदल देनी है। इसका उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो बाल्यकाल से केवल अपनी ही भाषा बोलते आये हैं और जो इस पर गर्व करते रहे हैं कि उनकी भाषा का संस्कृत से कोई संबंध नहीं है और वही एक ऐसी भाषा है जो संस्कृत की तुलना में खड़ी रह सकती है। आप इस पर विचार करें। इस स्थिति में हमें पहले अनिच्छा होने पर भी, अपने दृष्टिकोण को बदलना है और फिर हिन्दी का अथवा संस्कृत का अध्ययन करना है। आपको पहले लोगों को शिक्षा देनी होगी। मेरा मतलब यह है कि नई व्यवस्था को स्वीकार करने में समर्थ होने के लिये उन्हें तैयार करना होगा। इस के पश्चात् उन्हें हिन्दी का अध्ययन करना होगा ताकि वे उन लोगों के साथ अपने लिये भी यथोचित स्थान प्राप्त कर सकें जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है।

यही नहीं आप हमारे लिये सदा के लिये रुकावट डाल रहे हैं। जिन लोगों की मातृ-भाषा हिन्दी है वे केवल हिन्दी सीखेंगे। किन्तु हमें दक्षिण में न केवल हिन्दी सीखनी पड़ेगी बल्कि अपनी मातृ-भाषा भी सीखनी पड़ेगी। हम अपनी मातृ-भाषा नहीं त्याग सकते। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक भाषा भी सीखनी होगी। इस व्यवस्था से आप हमारे लिये सदा के लिये रुकावट पैदा कर रहे हैं। आप उत्तर भारत के निवासियों को यह समझना होगा कि हम कितना त्याग कर रहे हैं।

आखिर बदले में हम क्या चाहते हैं? हम यह कहते हैं कि लिपि को ही नहीं बल्कि अंकों को भी रखकर इस विषय को पेचीदा न बनाइये। अंक लेखे, आंकड़ों आदि के संबंध में काम में आते हैं। आप केवल भाषा और लिपि का ही नहीं बल्कि अंकों का भी अपहरण करना चाहते है। आप यह कहते हैं कि भविष्य में हिन्दी अंकों में ही लेखा रखा जायेगा और हिन्दी अंकों में लिखा हुआ लेखा ही आय-कर प्राधिकारियों के सामने रखा जा सकेगा। श्रीमान् बहुत काल से हमें इन्हीं अंकों का अभ्यास रहा है। आखिर अंकों के प्रश्न का केवल दक्षिण भारत से ही संबंध नहीं हैं यह सुविधा का प्रश्न है और इससे भारत के और भारत के बाहर के लोगों का संबंध है। आंकड़े बाहर भी भेजे जाते हैं। लेखे और विज्ञान में विशेष अंकों का प्रयोग होता है। यदि आप यह कहते हैं कि हिन्दी अंकों को स्वीकार करना ही होगा तो आप अनेक काम किस प्रकार करेंगे? यदि आप बाहर की बातें सीखना चाहेंगे, चाहे वह विज्ञान हो अथवा महाजनी, आपको बाहर की किताबें पढ़नी होंगी और उनमें अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में ही विवरण दिया होगा।

आखिर अन्तर्राष्ट्रीय अंकों पर क्या आपत्ति है? यह आपत्ति केवल इस धारणा से की जा रही हैं कि हमें शत प्रतिशत हिन्दी स्वीकार करनी चाहिये। कहा जाता है कि चूंकि आप हिन्दी भाषा को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गये हैं इसलिये हिन्दी अंकों को भी स्वीकार कर लीजिये। आपको इसकी चिंता नहीं है। कि इसका परिणाम क्या होगा। आखिर सारा संसार अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार कर रहा है। आप सारे भारत पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। फिर आपको क्यों संकोच हो रहा है?

लोक अधिकतर भावनाओं से ही प्रेरित होते हैं और उन भावनाओं को पूरा करना कठिन होता है। जो बातें कही जाती है उनका भी कुछ महत्व नहीं होता क्योंकि हम अपनी भाषा को त्याग कर हिन्दी को स्वीकार कर चुके हैं। जो बातें की गई हैं और जो बातें की जाने वाली है उनसे कहीं अधिक आपत्तिजनक हिन्दी-भाषी लोगों का हमारे साथ व्यवहार तथा उनका मांग करने का ढंग है। कहा जाता है, "निस्संदेह आपको स्वीकार करना ही चाहिये।" इस प्रकार की बातों से ही हमारा धैर्य टूटता है। मैं उत्तर भारत के लोगों से अपील करता हूं कि वे इस प्रकार का रुख न अपनायें। हमें यह भावना उत्पन्न करनी है कि हमारा एक ही देश है और हमें एक साथ रहना है। हमें एक राष्ट्र का निर्माण करना है। इस समय वह अस्तित्व में नहीं है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब पारस्परिक आदान-प्रदान हो और एक दूसरे के लिये जगह बनाई जाये और प्रत्येक व्यक्ति को किसी के हुक्कों के अधीन हो जगह न मिले। तभी भारत उन्नति कर सकता है और सफलता के साथ कार्य कर सकता है तथा एक राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

अन्यथा कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में क्या होगा और उसकी कल्पना ही से मैं कंपित हो उठता हूं। एक दूसरे का ध्यान रखकर कार्य करना चाहिये। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि यदि देश में संकट उपस्थित होगा तो बाहर के देश हमेशा उससे लाभ उठाने का प्रयास करेंगे। हमारे सामने बर्मा और अन्य देशों के उदाहरण हैं। यदि कल इस देश में कोई संकट उपस्थित हुआ तो क्या स्थिति होगी? जब तक आप एक राष्ट्र का निर्माण नहीं करते और प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न नहीं करते कि देश के मामलों में उसका भी हाथ है और यह देश उसका अपना देश है और इसी भावना को बनाये रखते हैं कि देश के एक भाग का दूसरे भाग पर प्रभुत्व है तब तक मुझे विश्वास है कि देश न तो सुरक्षित रह सकता है और न उसकी उन्नति ही हो सकती है। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं हिन्दी भाषी लोगों से फिर अपील करता हूं कि वे प्रभुत्व रखने और हुक्म देने के रुख को त्याग दें और अन्य लोगों के साथ अपने लिये भी जगह बनायें।

***श्री सतीश चन्द्र सामन्त** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 225 और 278 का प्रस्ताव रखा है। संशोधन संख्या 223 में मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि बंगला को भारत की राज-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। भाषा के संबंध में यह कहा जा सकता है कि बच्चे अपनी माता की गोद में ही भाषा सीख जाते हैं और जिस भाषा को वे बोलते

[श्री सतीश चन्द्र सामन्त]

हैं वह उनको मातृ-भाषा कही जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मातृ-भाषा प्यारी होती है। इस समय अपने देश के प्रशासन के लिये हमें एक राज-भाषा, एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है। इसलिये विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित भाषाओं तथा मातृ-भाषाओं के संबंध में कोई विवाद नहीं होना चाहिये। मुझे किसी भाषा से कोई शिकायत नहीं है। मैं केवल इस आदरणीय सभा के विचारार्थ उसके सामने बंगला का प्रश्न रखना चाहता हूं।

बंगला एक सुसम्पन्न भाषा है और उसका अपना दीर्घकालीन इतिहास है। उसका साहित्य प्राचीन तथा ओजस्वी है। उसका अपना शब्द विज्ञान आदि भी है। इसलिये यह अप्रासंगिक न होगा कि मैं सभा की स्वीकृति के लिये बंगला के प्रश्न को उसके सामने रखूं। मैं यह जानता हूं कि मेरे अधिकांश मित्र एक ऐसी भाषा को स्वीकार करने पर तुले हुये हैं जो अन्य भाषाओं की अपेक्षा भारत के लोगों को अधिक सुबोध होगी। मेरा यह निवेदन है कि किसी भाषा को स्वीकार करने की कसौटी यह नहीं होनी चाहिये कि वह अधिक लोगों को सुबोध है। अन्य बातों पर भी विचार करना चाहिये। जब हम किसी भाषा को अपनी राज-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा बनायें तो हमें यह आशा करनी चाहिये कि वह इस योग्य है कि हम उसे एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बना सकेंगे। इस दृष्टि से हमें देखना चाहिये कि भारत की किस भाषा ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में स्थान प्राप्त किया है भले ही वह थोड़ा सा ही क्यों न हो। मेरा निवेदन है कि आक्सफोर्ड और वार्सा के समान विदेश के विश्वविद्यालयों में बंगला की शिक्षा दी जाती है और अमरीका के हार्वार्ड विश्वविद्यालय में रवीन्द्रवाद की शिक्षा दी जाती है। पेरिस, म्यूनिख, मास्को और रोम की भाषा संबंधी संस्थाओं में भी उसे स्वीकृति प्रदान की गई है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि बंगला के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संबंध हैं। अब बंगला की शब्दावली पर विचार कीजिये।

वैज्ञानिक शब्दावली के प्रश्न को लीजिये। सर पी.सी. राय, शांति निकेतन के जगदानन्द राय, बंग वासी कालेज के स्वर्गीय प्रिंसिपल जी.सी. बोस ने तथा राजेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी और अन्य लोगों ने बंगाली की वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने के लिए अधिक परिश्रम किया। बंगला की मासिक पत्रिका ज्ञान-विज्ञान वैज्ञानिक शब्दावली के विकास के संबंध में ही निकलती है बंगला में यह सब चीजें हैं।

इन बातों के अतिरिक्त मेरा आपसे निवेदन है कि आप आदरणीय कवि, गुरु देव, श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर के संबंध में भी विचार करें। उन्होंने विश्व भारती की स्थापना की थी जिसमें उन्होंने बंगला तथा अन्य भारतीय भाषाओं तथा कुछ अन्य देशों की भाषाओं की शिक्षा का प्रबन्ध किया था। भारत में ही नहीं बल्कि सारे संसार में रवीन्द्र नाथ के नाम से हर कोई व्यक्ति परिचित है। इस सभा में भी कोई स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं है जो इस नाम को न जानता हो। रवीन्द्र नाथ के गीति-काव्य को तथा गीतों को सभी लोग सीखते हैं और गाते हैं। संसार की कई भाषाओं में उनका अनुवाद हो चुका है और अमोल रत्नों के समान उनका संग्रह किया गया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातक कक्षाओं से ऊपर की कक्षाओं में भी सभी भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जाती है।

एक अन्य बात की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं और वह यह है। अब हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है। अपने स्वातंत्र्य-संग्राम में हमें महान गीत बन्दे मातरम् से प्रेरणा मिली है। इस मंत्र के लिये सहस्त्रों लोगों ने बलिदान किया। बन्दे मातरम् के लिये सहस्त्रों लोगों ने अपना धन, सम्पत्ति सभी कुछ बलिदान कर दिया। इस गीत से भारत के प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा मिली थी। इस गीत को बंकिम चन्द्र चटर्जी ने रचा था और यह हमें उनकी पुस्तक 'आनन्द मठ' से प्राप्त हुआ था। आप अपनी राष्ट्र-भाषा और राज-भाषा को चुनने जा रहे हैं, इस कारण मैं आपके दिल व दिमाग को इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मेरा किसी भाषा से कोई झगड़ा नहीं है। मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि बंगला में 1200 ई. से ही अरबी, तुर्की और फारसी से शब्द लिये जाते रहे हैं। बाद को उस भाषा में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषाओं से भी शब्द लिये जाते रहे। यद्यपि आरम्भ में बंगला प्राकृत थी, और इस कारण उसमें बहुत से शब्द संस्कृत के हैं, किन्तु उसमें इन भाषाओं से भी शब्द लिये जाते रहे हैं। जब आप राष्ट्र-भाषा तथा राज-भाषा को चुनें तो इस पर भी विचार करें।

बंगला में प्राचीन प्रथाएं, संस्कृत, साहित्य सभी कुछ है। इसके अतिरिक्त मेरा यह भी निवेदन है कि बंगला ने अन्य दिशाओं में भी प्रगति की है। बंगला की टाइप की मशीन भी है और मेरे माननीय मित्र तथा इस सभा के सदस्य आनन्द बाजार पत्रिका के श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार ने बंगला की लिनोटाइप मशीन बनाई है। 1915 से बंगला की शीघ्र लिपि चलन में है। इस प्रकार इस भाषा में राजकीय कार्य आसानी से किया जा सकता है। भारत में इस कार्य के लिये वह बहुत उपयुक्त प्रमाणित होगी।

श्रीमान्, इस संबंध में बहुत से विवाद चल पड़े हैं और मैं उनमें से किसी में भी नहीं पड़ना चाहता। मैंने आपके समक्ष बंगला के पक्ष में तर्क उपस्थित किये हैं किन्तु जहां तक मेरा संबंध है मैं उस भाषा को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं जिसे इस सभा के अधिकांश सदस्य स्वीकार करेंगे। किन्तु उस भाषा को इस सभा के कम से कम तीन चौथाई सदस्य स्वीकार करें क्योंकि यदि इससे कम संख्या हुई तो फिर विवाद होगा और लोग उसे हृदय से स्वीकार नहीं करेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिन लोगों को राष्ट्र-भाषा सीखनी होगी उनके लिये कुछ कठिनाई होगी। हम भारतीयों ने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिये बहुत कष्ट सहन किये हैं और बलिदान दिये हैं। क्या आप अपनी राष्ट्र-भाषा के लिये कुछ कष्ट सहन नहीं कर सकते हैं? हमें और प्रत्येक व्यक्ति को इतना बलिदान करने के लिये तैयार रहना चाहिये। जिम्मेदारी हमारी ही है। हमें उस भाषा को चुनना चाहिये जिसे सभी लोग स्वीकार कर सकते हैं और जिसके लिये थोड़ा बहुत त्याग कर सकते हैं। संस्कृत की चर्चा की गई है। हिन्दी की चर्चा की गई है। मैं उनके विरोध में कुछ नहीं कहने जा रहा हूं क्योंकि प्रत्येक भाषा का आदर करना चाहिये। मैं यहां अपने मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि वे विवाद में न पड़ें। वे अपने तर्कों को शांतिपूर्ण तथा न्यायपूर्ण ढंग से उपस्थित करें ताकि एक ऐसी भाषा चुनी जा सके जिसे हम सभी स्वीकार कर सकें। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं सिफारिश करता हूं कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री अलगू राय शास्त्री** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं तो आपकी आज्ञा से यह निवेदन करना चाहता हूं कि श्री माननीय गोपालस्वामी आयंगर जी ने जो अपना संशोधन पेश किया है उसके स्थान पर वह छोटा सा संशोधन स्वीकार किया जाये जो मैं रख रहा हूं।

That in amendment No. 65 above, for the proposed new Part XIV-A, the following be substituted:—

"NEW PART XIV A

301-A. (1) The Official language of the Union shall be Hindi in Devnagri Script.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, it shall be open to the Government of the Union to use English for the purposes for which it has been in use all these years, during a transition period extending over 15 years at the most.

(3) It shall be the duty of the Government of the Union to encourage the progressive use of Hindi in Devnagri Script in Governmental affairs in such a manner that after the end of the said transition period of 15 years Hindi may replace English completely."

[उपरोक्त संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन भाग 14-क के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:-

नवीन भाग 14-क

301-क (1) संघ की राज-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।

(2) इस अनुच्छेद के खंड (1) में किसी बात के होते हुये भी इतने वर्षों तक जिन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी काम में आती रही है उन प्रयोजनों के लिये अन्तरिम काल में अधिक से अधिक पन्द्रह वर्ष तक उसे प्रयोग करने की संघीय सरकार को स्वतंत्रता होगी।

(3) संघ की सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह राजकीय कार्यों के लिये देवनागरी लिपि सहित हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग को इस प्रकार प्रोत्साहित करें कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् हिन्दी अंग्रेजी का पूर्ण स्थान ले ले।]

जो संशोधन गोपालस्वामी आयंगर जी ने उपस्थित किया है, उसको देखा जाये तो वह अपने तरीके की एक पुस्तक बन जाता है। हम विधान बना रहे हैं। उसमें मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख होना चाहिये। धारा 99 जो कि ड्राफटिंग कमेटी ने

पहले तैयार की थी उसमें केवल इतने ही शब्द आये थे कि पार्लियामेंट की भाषा हिन्दी होगी, या अंग्रेजी होगी। थोड़े ही में यह बात समाप्त कर दी गई थी। किन्तु अब जो संशोधन हमारे सामने आया है उसमें अनेक बातों का समावेश है। बहुत सी चीजें उसमें मिला दी गई हैं। जब मैंने शुरू में ड्राफटिंग कमेटी की धारा पढ़ी थी तो मैं यह समझता था कि हिन्दी या इंग्लिश के ही कह देने से भाषा का पूरा रूप हमारे सामने आ जाता हैं अंग्रेजी तो एक अनिवार्य चीज इसलिये बन गई है कि हमारा देश बहुत दिनों से, लगभग दो सौ वर्ष से, अंग्रेजी साम्राज्यशाही के नीचे दबा रहा है और जो हमारे विदेशी शासक थे उनकी भाषा हमारे ऊपर लाद दी गई थी। उस लादी हुई भाषा से कोने कोने में हमारे केन्द्रीय शासन में भी, अंगेजी का बोलबाला हुआ, और उसका साम्राज्य भी। आज वह बहुत ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठित दिखलाई देती है। कल तक तो वह इस देश की स्वामिनी थी। लेकिन जब हमने अपनी स्वतंत्रता का आन्दोलन शुरू किया था तब हमारे सामने आदर्श क्या था। हम क्या समझते थे स्वतंत्रता के आन्दोलन का अर्थ? हम स्वतंत्रता चाहते थे। अंग्रेजी साम्राज्यशाही से स्वतंत्रता चाहते थे तो उसमें हमको अपने स्वराज्य की कल्पना करते हुये यह बात सफाई से दिखलाई पड़ती थी कि हमारा स्वराज्य होगा '"स्व" शब्द संस्कृत का शब्द है। यह शब्द हिन्दी में भी जैसे का तैसा ले लिया गया है। तो '"स्व" शब्द के अर्थ में अपनी जो हमारी इंडिविजुऐलिटी है, जो हमारा व्यक्तित्व है, जो कुछ हम हैं, वह सब आता है। उसका राष्ट्रीय अर्थ था कि हम एक राष्ट्र हैं, हम एक जाति हैं, हम एक देश हैं, हमारा एक पुराना इतिहास है। हमारी एक भाषा है और उस भाषा में हमारे पास साहित्य है। उस भाषा का रूप हम बतलाते रहे हैं। उस भाषा में वैदिक संस्कृति का एक रूप हमारे सामने रहा है। जिसका एक काफी अर्से तक प्रभुत्व था। किन्तु भाषा एक जगह टिकती नहीं। जिस अंग्रेजी भाषा का बड़ा भारी महत्व रोज बताया जाता है उसका पुराना नमूना क्या था? उसमें किस प्रकार से पहले किंग शब्द लिखा जाता था? और आज कैसा लिखा जाता है? "Kynge" अभी मैं पढ़कर आया हूं, पुराना स्टाइल। उसका तलफ्फुज, उसके लिखने का तरीका, सब भिन्न था। थोड़े से शब्दों में यह अंग्रेजी भाषा बोली जाती थी। कार्ल मार्क्स ने इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन इंग्लिस्तान के बारे में जो लिखा है वह मौजूद है। जब विदेशों में उनके व्यापार को फैलाने के लिए इंग्लिस्तान के खेतिहारों की जमीनें ले ली गईं थीं और उन पर भेड़ों के पालने के लिये फार्म खोले गये जिसके ऊपर "ऊजड़ गांव", "डेज़र्टेड विलेज", नाम की पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई, तो उसका चित्रण करते हुये एक हिस्टोरियन ने पुरानी अंग्रेजी में, गांव में जो दुर्वयवस्था फैल गई थी उसका चित्रण किया है। कार्ल मार्क्स ने यह चित्रण अपनी "कैपिटल" नामक पुस्तक में दिया है। उस चित्रण की भाषा पुरानी अंग्रेजी का सुन्दर उदाहरण है।

उस अंग्रेजी भाषा से आज की अंग्रेजी भाषा का कोई ताल्लुक नहीं है। रसकिन, डिकेन्स, शेक्सपियर और मिल्टन की अंग्रेजी और पुरानी अंग्रेजी के स्टाइल में अन्तर है, भाषा एकसी नहीं रहती, भाषा रूपान्तरित होती रहती है, उसका विकास होता रहता है। उसी वैदिक संस्कृत के स्रोत से हमारी वह भाषा उत्पन्न हुई जो हमारी राष्ट्र-भाषा होने जा रही है। तो हम अपने स्वरूप में प्रकट होना चाहते थे। पराधीनता की बरफ के नीचे हमारे जातीय जीवन के गुलाब का पौधा दबा

[श्री अलगू राय शास्त्री]

हुआ था, उसकी पत्तियां सूख गई थीं, फूल सूख गये थे, एक सूखा डंठल बाकी था। हम समझते थे कि बसंत आयेगा, हम समझते थे कि बरफ पिघलेगी और हम जागेंगे और हमारा गुलाबी जीवन विकसित होगा। हमारे जातीय जीवन के गुलाब में गुलाब के ही फूल फूलेंगे। हमारे देश को सदियों की गुलामी में दबा रहना पड़ा है। हमारे इस हरे भरे मैदान में बाहर से बहुत दफा आक्रमण हुये हैं और उन आक्रमणों का फल यह हुआ है कि हम पर पराधीनता का बोझा हो गया, उस पत्थर के नीचे हमारा जातीय जीवन दब गया और हम उससे अपने को निकालने का उद्योग करते रहे हैं। उस उद्योग का एक रूप था और वह था हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन। उन आन्दोलनों से हम गुजरे हैं। उनका एक लम्बा इतिहास है। उस इतिहास की सबसे आखिरी कड़ी वह लड़ाई की कड़ी है जिसने हमको ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लोहा लेने के लिए विवश किया था। सन् 1857 का आन्दोलन, जिसे बलवा या विद्रोह कहा जाता है, उसका एक प्रतीक था। उसमें जो चित्र हमको दिखलाई पड़ते है। जब आबजेक्टिव रिजोल्यूशन, जब लक्ष्य का प्रस्ताव, यहां उपस्थित था उस समय में बोला था और मैंने कहा था कि उस आन्दोलन में जो चित्रपट है उसमें एक तरफ झांसी की रानी दिखलाई पड़ती है, दूसरी तरफ बहादुरशाह दिखलाई पड़ते हैं। हमको दिखलाई पड़ती है अवध के नवाबों की बेगमें एक तरफ और दूसरी तरफ हमें दिखाई पड़ते हैं टीपू सुल्तान। उसी में हमें तांतिया टोपे, नाना फड़नवीस दिखाई देते हैं, जिन सबके मिले हुये रक्त से जो धारा बही थी उसी से हमारी स्वतंत्रता की भावना का जो सुन्दर वृक्ष था वह पल्लवित हुआ था और बढ़ा था, और अन्त में महात्मा गांधी के नेतृत्व में हम लोगों ने वह दिन देखा कि आज इस भवन में उस महापुरुष का अभिवन्दन करते हैं और हम स्वतंत्र हुये हैं। स्वतंत्र हम हुये तो हमारी "स्व" भी विकसित होना चाहिये, हमारा जीवन विकसित होना चाहिये।

हमारे जीवन का भी कोई इतिहास है। कुछ लोग कहते हैं कि हमारी भाषा नहीं है, हमारा कुछ नहीं है, हमें सब कुछ निर्माण करना है। मैं विनयपूर्वक कहूंगा कि हमारी एक राष्ट्रीय भाषा है, एक ऐसी भाषा कि जिसको अधिकांश आदमी इस देश में समझते हैं, यह मेरा अनुभव है। सन् 1942 में मैं बम्बई से आया और भागा हुआ फ्रंटियर गया। आज खान बन्धु यहां दिखाई नहीं देते, इससे हृदय को वेदना होती है। मैंने दरयाये सरआब के किनारे उनके कैम्प में फ्रंटियर गांधी के दर्शन किये थे। वहां मैं जिन वालंटियरों से बात करता था तो पश्तों में नहीं करता था और न अंग्रेजी में करता था। मैं सीधी सादी हिन्दी में बोलता था, जैसा कि आज बोल रहा हूं, और उसको वह सब समझते थे। मैं सन् 1928 में मद्रास गया, लाला लाजपत राय के साथ, और वहां भी मैंने लोगों से बात की। अंग्रेजी बोलने का मुझे अभ्यास नहीं है, इसलिये मैं हिन्दी में ही बोलता था और लोग मुझको समझते थे और मुझसे बातचीत करते थे। मैंने कोकानडा कांग्रेस के अवसर पर जब स्वर्गीय जमना लाल जी बजाज की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था तो कुछ बालिकाओं को कविता पाठ करते सुना था। उन्होंने इतनी अच्छी तरह कविता पाठ किया कि उतनी अच्छी कविता हम उत्तर भारत के लोग, जो कि हिन्दी जानने का नाज़ करते हैं, शायद न पढ़ सकें। हिन्दी एक अन्तःप्रान्तीय

भाषा है जिसको हम राष्ट्र-भाषा बनाने का संकल्प कर रहे थे और यह महात्मा गांधी की प्रेरणा है जिससे यह कल्पना हमारे सामने आई। हमको स्वतंत्र होना था, अंग्रेजों को जाना था। अंग्रेज जाते तो अपने साथ अपनी भाषा भी लेकर जाते और हमको अपनी भाषा को बोलने का अवसर मिलता अंग्रेजों की भाषा हम ने स्वेच्छापूर्वक नहीं सीखी थी। यह तो लार्ड मेकाले की स्कीम थी कि उनको सस्ते क्लर्क चाहिये थे जिससे हमको उन्होंने पढ़ाया। जिन लोगों ने उस भाषा को शुरू में सीख लिया वह उस शासन व्यवस्था के साथ अधिक सम्पर्क में आ गये और उस हकूमत के साथ उनके मिल जाने के कारण उनको उससे स्वाभाविक रूप से ममता हो गई है। लेकिन जब स्वतंत्रता आती तो वह अपनी भाषा लेकर आती अपना वेष लेकर आती, अपनी भावनाओं को लेकर आती, अपनी कामनाओं और आकांक्षाओं को लेकर आती और वह आई है।

"भाषा भेष और भोजन है जिसको अपना प्यारा।

उस पर कभी नहीं चलने को है औरों का चारा।।"

इस भावना के कारण हमें अपनी राष्ट्रीय भाषा को लाने की स्वाभाविक प्रेरणा थी। वह क्या भाषा है? इसमें सन्देह नहीं कि जितनी भाषाएं इस देश में बोली जाती हैं उनकी जननी संस्कृत है। संस्कृत ही से जितनी यहां की भाषाएं हैं उनका जन्म हुआ है और संस्कृत के अक्षय भंडार से सब भाषाओं ने अपने शब्द लिये हैं। लेकिन वह जो वृद्धा माता है आज वह इस तख्त पर नहीं बैठ सकती। उसकी इन बेटियों में जो ज्येष्ठा हो और श्रेष्ठ हो और सबसे बड़ी हो वह बैठ सकती है। इस देश में बहुत से पुरुष हैं, पर श्रीमान् जी, परमात्मा ने आपको इस योग्य बनाया है कि आप इस आसन पर विराजमान हैं और हमारी कामना है कि इंडिया को रिपब्लिक घोषित होने पर आप ही उसके पहले अध्यक्ष बनें। कौन इस पद को नहीं चाहता मगर उस आसन पर बैठने की सबमें योग्यता नहीं है। हम चाहते हैं कि जो हमारी पहली विधान परिषद् का अध्यक्ष है वही रिपब्लिक का अध्यक्ष हो तो इसमें क्या हम कोई बड़ी अतिशयोक्ति करते हैं या कोई लोभ प्रदर्शित करते हैं।

***अध्यक्षः** आप यह असंगत बात कहते हैं।

***श्री अलगू राय शास्त्रीः** जब हम इस विषय पर विचार करते हैं कि कौन राष्ट्र-भाषा हो तो यह तो सब मान लेते हैं कि अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। तो फिर जो भाषायें प्रचलित हैं उनमें कौन हो सकती है? हिन्दी को ही अन्तर्प्रान्तीय भाषा होने का गौरव प्राप्त है। इस देश के अधिकांश पुरुष, स्त्रियां और बच्चे इसी भाषा को बोलते हैं। कुछ भाइयों ने कहा है कि उनका साहित्य ऊंचा है। हम तसलीम करते हैं कि उनका साहित्य ऊंचा होगा। किन्तु वह यह बतायें कि क्या उस भाषा में बोलने वालों की संख्या ईमानदारी के साथ उस संख्या से अधिक है जो कि इस भाषा में बोलने वालों की है। अगर नहीं है तो अधिकांश आदमी जिस लिपि को जिस भाषा को समझते हैं, वहीं भाषा होनी चाहिये, अंग्रेजी को रिप्लेस करने के लिये या कोई दूसरी भाषा होनी चाहिये। हिन्दी की होड़ है अंग्रेजी के साथ। उसकी बंगाली से होड़ नहीं है, तेलुगु से होड़ नहीं है, तामिल से होड़ नहीं है, कनाड़ी से होड़ नहीं है, पश्तो या किसी दूसरी भाषा से नहीं है। उसकी

[श्री अलगू राय शास्त्री]

होड़ तो केवल अंग्रेजी से है। अंग्रेजी हुकूमत गई, अंग्रेज गवर्नर जनरल और गवर्नर गये। अब भारतीय गवर्नर और गवर्नर-जरनल हैं। अब भारतीय भाषा भी होनी चाहिये। सब बातों को देखने से, उसकी सरलता और सुगमता को देखने से हिन्दी को ही वह महत्व प्राप्त हो सकता है। हिन्दी वालों को न किसी से कोई कलह है, न कोई द्वेष है। केवल हिन्दी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि इस भाषा को सब जानते हैं और यह सर्वप्रिय है। तो इसके लिये किसी के मन में यह रोष क्यों हो कि हिन्दी भाषा वाले चाहते हैं कि अन्य भाषाओं पर वह अपनी भाषा लाद दें। यह प्रश्न नहीं है। लादना तो आप चाहते हैं ड्राफटिंग कमेटी लादना चाहती है जिसने हिन्दी के लिये लिखा है कि वह राज्य की पार्लियामेंट की भाषा होगी। दूसरी भाषाओं को यह स्थान प्राप्त नहीं है। और भाषायें प्रान्तीय भाषाएं हैं। हो सकता है कि इक्के दुक्के आदमी उसको प्रान्त के बाहर बोलते हों, पर किसी भाषा को यह गौरव प्राप्त नहीं है कि वह अन्तर्प्रान्तीय हो। यह भाषा यू.पी. में, बिहार में, सी.पी. में, मध्य भारत में, राजपूताना में और पेशावर में भी बोली जाती है और सभी जगह समझी जाती है। इतना बड़ा जिसका व्यापक क्षेत्र है उसी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिये। इसको राष्ट्र-भाषा बनाने में कोई गौरव मुझे नहीं है जो कि हिन्दी बोलता हूं, वरन् यह गौरव उनको है जो हिन्दी उतनी तेज़ी से नहीं बोल सकते हैं, जिनको इस पर इतना कंट्रोल या अधिकार और अभ्यास नहीं है, परन्तु फिर भी वे स्वीकार करते हैं कि वह सरल है, सुगम है। इसकी लिपि की विशेषता कुछ मैं कहूंगा। मेरे एक भाई ने तो कहा कि रोमन लिपि होनी चाहिये। वे विद्वान हैं। श्री एंथनी के विद्वान होने में कौन शक कर सकता है? किन्तु इस संबंध में आप विचार करें। लिपियां दो प्रकार की होती हैं। एक शीघ्र लिपि और एक सामान्य लिपि। सामान्य लिपि के लिये यह आवश्यक है कि जो अक्षर और जो शब्द जिस तरह बोला जाता हो वैसे ही लिखा जा सके, जैसे मेरा चित्र मेरे सामने आ जाये। यह तो है लांग हैंड की विशेषता। यह तो हुई सामान्य लिपि की विशेषता। शार्टहैंड में तरह-तरह की योजना बनानी पड़ती है और तरह-तरह के ढंग निकालने होते हैं। जिससे थोड़े से चिन्हों में ज्यादा बात लिखी जा सके। हम बचपन में बच्चों को जब पढ़ाते हैं तो अ, आ के अक्षर से शुरू करते हैं अगर हम बोलें 'ए' और काम ले उस ध्वनि से हम "अ" और "आ" का तो यह उचित नहीं हो सकता है। इस तरह से अगर लड़के की पढ़ाई हो तो वह एक गलत ट्रेनिंग होगी। अंग्रेजी या रोमन लिपि से ए, बी,, सी, डी आदि अक्षरों का ताल्लुक है। बोलने को "ए" "बी" और काम लेना है "अ" "आ" "ब" का। बोलें "सी" और उससे काम लें "क" "का" और "स" का। इस तरह तो यह कोई भाषा नहीं है और यह लिपि के साथ कोई न्याय नहीं है। रोमन लिपि में जब हम अक्षरों को बोलते हैं और जो अक्षर पढ़े जाते हैं तो उनसे मालूम होता है कि वह हमारे साथ एक अन्याय हैं शार्टहैंड में पिटमैन ने जो पद्धति तैयार की है और जो यहां पर शार्टहैंड के रिपोर्टर बैठे हैं वे सब जानते हैं कि पिटमैन ने भी हिन्दी को ध्वनि की पद्धति पर अवलम्बित जो स्क्रिप्ट है उसको स्वीकार किया है। उसने "क" "ख" "ग" इस प्रकार के अक्षरों की ध्वनि के अनुकूल माना है।

शार्टहैंड वालों ने भी इस सिस्टम को आसान समझा है और उसको मान लिया हैं इसलिये यह विवाद खत्म हो जाता है कि लिपि में कौन सुन्दर है। लिपि की दृष्टि से न रोमन लिपि आ सकती है और न कोई दूसरी लिपि देवनागरी के

सामने आ सकती है। उर्दू की लिपि में भी वही दोष है जो रोमन लिपि में है। उर्दू लिपि में भी अक्षरों का उच्चारण, उनकी ध्वनियें कुछ हैं और काम उनसे कुछ और लिया जाता है। बोलेंगे "अलिफ" और काम लेंगे उससे "अ" और "आ" तथा "ए" का। बोलेंगे "लाम" काम लेंगे "ल" का। लोकाट लिखना होगा तो "लाम" "वाव" "काफ" "अलिफ" और "टे" अक्षरों का प्रयोग करेंगे। ध्वनि के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। यह कैसा अन्याय है? सामान्य लिपि के लिये ऐसा करना उचित नहीं। शार्टहैंड के लिये ही अक्षरों को तोड़ा मरोड़ा जा सकता हैं परन्तु उसमें भी मैं कह चुका हूं कि ध्वनि के आधार पर ही अक्षरों को लेना चाहिये। हिन्दी को जो लिपि है और उसकी जो वर्णमाला है वह बहुत ही सरल है और बहुत ही सुगमता से वह सीखी जा सकती है। उसके स्वरों का उच्चारण भी बहुत सुन्दर और सरल है। बहुत आसानी के साथ उसका उच्चारण किया जा सकता है। इसका उच्चारण साफ है। स्वरों में "अ" का उच्चारण आता हैं इसके बदले में कोई और स्वर नहीं है। ये सब स्वर वैज्ञानिक तरीके पर हैं। उनकी कुछ कैटेगरी हैं जैसे अकुहविजर्सनीयनां कंठः, इचुयशानां तालुः "अ" कवर्ग तथा "ह" कंठ से और "इ" चवर्ग "ग" और "श" तालु से निकलते हैं। इसी प्रकार दूसरे अक्षरों को अलग-अलग वर्गों में बांटा गया है। अलग-अलग अक्षरों और वर्गों के अलग-अलग देवता हैं। किसी का इन्द्र किसी का वरुण इत्यादि। तो हमारी वैज्ञानिक आधार पर जो यह भाषा है उसको समझते में किसी भी विद्यार्थी को कठिनता नहीं होती है, वह कुछ ही सप्ताह में उसकी वर्णमाला को आसानी से सीख सकता है और अच्छी तरह से उसको ज्ञान हो जाता है। मैं समझता हूं कि ड्राफटिंग कमेटी के विद्वानों ने और कानून विशारदों ने भी इस बात का अनुभव किया है और उन्होंने हिन्दी भाषा को ड्राफ्ट में लिखा है और हिन्दी कहते ही उसकी लिपि, देवनागरी लिपि, स्वयं सामने आ जाती है। जब हम अंग्रेजी भाषा कहते हैं तो उसकी लिपि रोमन हमारे सामने आ जाती है यह अंग्रेजी भाषा, हमारी भाषा इन पन्द्रह वर्षों के लिये होगी। हमारे काम चलाने के लिये यह भाषा होगी, इसको हम इन्कार नहीं कर सकते हैं और इसको हम हटा भी नहीं सकते हैं। अंग्रेजी भाषा को हम 15 वर्ष तक सरकारी काम चलाने के लिये अवश्य रखेंगे। 15 वर्ष के अन्दर जो हमारे सरकारी नौकर हैं वह इसका काफी ज्ञान प्राप्त कर लेंगे और काफी अच्छी तरह से और आसानी से वे उसे सीख सकते हैं। 15 वर्ष का समय काफी है और हिन्दी भाषा ऐसी कठिन नहीं है कि हमारे सरकारी कर्मचारी उसको नहीं सीख सकें। जब हमारे आई.सी.एस. के आदमियों को दो साल की ट्रेनिंग में कई भाषाओं को सीखना पड़ता है और वे उसका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो इसमें कोई शक नहीं है कि वह हिन्दी भाषा को उस 15 वर्ष के अन्दर सीख सकेंगे। जो लोग स्वतंत्र सरकार के कर्मचारी हैं, जिनको काफी ज्ञान है, वह अवश्य इन वर्षों में हिन्दी भाषा का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनमें योग्यता है, और उन्हें पूरी सुविधा है और पर्याप्त अवकाश।

अंग्रेजी भाषा हमारे देश की किसी प्रान्त की भाषा नहीं है, न वह किसी जगह की सरकारी ही भाषा है। यह भाषा तो विदेशी सरकार के जो शासक थे उनकी भाषा है। उनके लाभ के लिये, उनके दफ्तर में कर्मचारियों के काम करने की भाषा है। जब उन्होंने इस भाषा को मेहनत करके सीख लिया है और उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, जब कि वह भाषा एक विदेशी भाषा थी, इस देश

[श्री अलगू राय शास्त्री]

में उसका जन्म नहीं हुआ, वह विदेशियों के जरिये इस देश में लाई गई थी और जिन्होंने अपनी सुगमता के लिये अपने राज्य का काम चलाने के लिये इस को इस देश में थोपा था, उनकी यह भाषा थी, तो मैं आपने यह पूछना चाहता हूं कि क्या आप इतना परिश्रम अपनी भाषा "हिन्दी" को सीखने के लिये क्या नहीं कर सकते हैं? अंग्रेजी भाषा को सीखने के लिये जब आपने इतने कष्ट सहे हैं तो हिन्दी भाषा तो उससे भी सरल है और थोड़ी सी मेहनत करने पर वह सरलता से सीखी जा सकती है।

हमारे जो नन्हें से बच्चे हैं उनको इस भाषा के सीखने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। हमारे जो कर्मचारी हैं वह बहुत तो रिटायर हो जायेंगे और फिर 15 वर्ष का जो अवकाश दिया गया है वह बहुत ज्यादा है उसमें वह सरलता से और सुगमता से इस भाषा को सीख सकते हैं। यदि हमें अपनी राष्ट्र-भाषा बनानी है उसका निर्माण करना है, तो हमें उसमें योग्यता हासिल करनी चाहिये। दूसरी भाषाओं से उसकी कोई होड़ नहीं है। अंग्रेजी का तो प्रारम्भ से ही विकास हुआ है और सदियों से वह एक देश की राष्ट्र-भाषा रही है और इन्होंने उसको दूसरे देशों में भी अपने लाभ के लिये थोपा। इस भाषा को सीखने से हमारे बच्चों की भी भावनायें वैसी ही हो जाती हैं और वह उसी तरह से सब बातों को देखने लगते हैं। अंग्रेजों के साथ हमें डोमिनियन में मिल कर नहीं रहना है। हम लोगों को इस बात का ख्याल करना चाहिये कि स्वराज्य के साथ ही साथ हमारी भी एक भाषा हो जिससे जनता यह समझे और गर्व के साथ कह सके कि हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है। हम लोगों को ऊंच नीच बातों में नहीं पड़ना चाहिये। अगर हम इस तरह से अपनी राष्ट्र-भाषा के मामले को सुलझायेंगे नहीं तो यह तरक्की भी नहीं कर सकेगी और हम लोग भी डूब जायेंगे।

इस्टोनिया और लिथवानिया जिन्होंने पिछली लड़ाई के बाद स्वतंत्रता की मांग की थी उन्होंने यह कहा था कि हमारे ऊपर विदेशियों का आक्रमण हुआ और उन्होंने हमारी राष्ट्र-भाषा को नष्ट करना चाहा। हमने अपनी राष्ट्र-भाषा की रक्षा की थी और उसकी रक्षा करने के लिए हम हर तरह से तैयार थे। ये नन्हीं नन्हीं छोटी रियासतें हैं और हमारे जिले गोरखपुर के बराबर हैं। उन्होंने अपनी भाषा की रक्षा की थी और जर्मनों के आक्रमणों से अपने को बचाया था। उन्होंने विदेशी आक्रमण से अपने को बचाया था।

आज हमारी जितनी प्रान्तीय भाषायें हैं हम उनका विकास चाहते हैं क्योंकि वे हिन्दी की प्यारी बहिनें हैं। उनमें से कई बहुत सुन्दर हैं और अच्छी हैं। मैं इस चीज़ का दावा नहीं करता कि सभी प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी का साहित्य ऊंचा है। मेरा तो मतलब केवल अन्तर्प्रान्तीय दृष्टि से यह है कि हिन्दी एक प्रान्त की नहीं बल्कि अनेक प्रान्तों की भाषा है। यही उसकी विशेषता है। दूसरे प्रान्तों में बड़े-बड़े कवि हुये है। इस चीज की तुलना मैं कबीर और तुलसी से नहीं करता। मैं इस चीज में नहीं जाना चाहता हूं। मैं मानता हूं दक्षिण में त्रिविल्लुवर का तामिल वेद कबीर की रचना के समान है या उससे अच्छा। इससे मेरा विवाद नहीं किन्तु मैं विनय से कहूंगा कि तेलुगू बोलने वाले इस देश में हिन्दी बोलने

वाले बहुत कम संख्या में होंगे। इस चीज से मुझे कोई सरोकार नहीं है कि एक प्रान्तीय भाषा का साहित्य दूसरे से बड़ा है या छोटा।

एक भाषा को लेना है, वह भाषा डिमोक्रेसी के सिद्धान्त से, बहुमत के हिसाब से, हमें लेनी होगी। सब दृष्टि से यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक है और वह बहुत सरल और बहुत ऊंची पहुंची हुई है। सूर के साहित्य की एक दो मिसालें मैं आपके सामने रखता हूं....

"पिया बिनु नागिनी कालड़ी रात।

कबहुंक यामिनि होति जुन्हैया,

डंसि उलटी ह्वै जात।।

मंत्र न फुरत यंत्र नहिं लागत, आयु सिरानी जात।

सूर श्याम बिनु विकल विरहिणी, मुरि मुरि लहरी खात ।। 1 ।।

मैं पूछता हूं कि आप किसी भाषा के साहित्य से उद्धृत कीजिये मैं भी उसको सुनूंगा। इसकी तुलना का कोई पद उपस्थित कर दीजिये। एक से बढ़ कर एक चीज़ भरी पड़ी है, देखिये तुलसी क्या कहते हैं?

अरुण पराग जलज भरि नीके।

शशिहिं भूष अहि लोभ अमीके।

यह है तुलसी का पद।

***अध्यक्षः** यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली है, कवि सम्मेलन नहीं है।

***श्री अलगू राय शास्त्रीः** मैं एक उदाहरण दे रहा हूं। कहा जाता है कि हिन्दी भाषा अनडेवेलप्ड है, उसमें कुछ नहीं है। श्रीमान् जी, यह कहा गया है। तो मेरी समझ में आया कि मैं कुछ बताऊं कि उसमें कुछ है। उसका बहुत बड़ा साहित्य है। लेकिन हम उसके साहित्य की वजह से उसको इस स्थान पर नहीं रख रहे हैं बल्कि इसलिये कि वह जनता की भाषा है। जो और भाषायें बोलते हैं उनसे अधिक बोलने वालों की यह भाषा है। उसका बहुत विस्तृत क्षेत्र है। इसलिये हम उसको अपना रहे हैं। और हम उसे नहीं अपना रहे हैं, आपको स्वयं उसे अपनाना पड़ रहा है। इसको हर एक व्यक्ति अपना रहा है। इसको हम स्वीकार कर रहे हैं और उसको स्वीकार करना आवश्यक हो गया है क्योंकि हम विदेशी भाषा के स्थान पर स्वदेशी भाषा को रखना चाहते हैं। यह अनिवार्य है ताकि हम अंग्रेजी को हटा सकें। जब हम इस प्रकार हिन्दी को अपनाते हैं तो मैं कहता हूं कि उसकी लिपि तो मौजूद है, ही जिस लिपि में कि ऋग्वेद लिखा गया है और जिस लिपि में हनुमान चालीसा लिखा गया है। जिस लिपि में ऋग्वेद से लेकर तुलसी दास जी का हनुमान चालीसा लिखा गया है उसको

[श्री अलगू राय शास्त्री]

देवनागरी लिपि कहते हैं। इसके लिये कोई दूसरी सुन्दर लिपि कहां से आवेगी? हमारी राष्ट्र-भाषा की देवनागरी लिपि है और उसी के अंक हैं:

तुलसी के शब्दों में जैसे "घटत न अंक नव (9) नव (9) के लिखत पहाड़" यह 9 का अंक देवनागरी लिपि के अंतर्गत है। इसी प्रकार:

"जगते रहु छत्तीस है वै (३६)

रामचरण छ तीन (६३)।

तुलसी देखू विचारि हिय,

है यह मतौ प्रवीन ॥ 1 ॥

तो यह अंक जिस तरह पहले लिखे गये हैं, जिस तरह से संस्कृत में ऋग्वेद में और यजुर्वेद में लिखे गये हैं उसी तरह से आज भी प्रचलित हैं। उस पर विवाद किस बात के लिये हो रहा है? लोग कहते हैं कि जरा सी चीज़ के लिये आप मानते नहीं, आप आग्रह करते हैं, दुराग्रह करते हैं। मैं आपसे कहता हूं कि जिस चीज को आप नन्हीं सी चीज समझते है। वह बहुत भारी विष वाली चीज हो सकती है। मैं कहता हूं कि एक आदमी दो सेर दूध पी सकता है मगर एक मक्खी का नन्हा सा सिर उसके साथ नहीं पी सकता है। वह चीज हजम नहीं हो सकती है। हम किस तरह से संख्या के रूप को विकृत कर दें और क्यों कर दें? किसके लिये कर दें? कुछ लोग कहते हैं कि (१) (।) एक तो बिल्कुल मिलता जुलता है। मैं श्रीमान् जी, आपके सामने अपने सूबे की बात निवेदन करना चाहता हूं। हमने अपने सूबे में ग्राम पंचायतों को बनाया है, गांव सभायें बनाई हैं और पांच-पांच गांव सभाओं के बाद अदालत पंचायत बना दी हैं। वह वहां पर चल रही हैं। हमारा सूबा छह करोड़ आदमियों का मुल्क है, हमारा सूबा इंग्लिस्तान से छोटा नहीं है, उससे बड़ा है। उस सूबे में हमने अपने गांवों में पंचायतें बना डाली हैं। उनको टैक्स लगाने का अधिकार दिया गया है। वह अपना एकाउंट रखेंगी, रजिस्टर रखेंगी। अब वह हिसाब कैसे रखेंगे, वह इस तरह रखते हैं कि एक रुपया चार आने तीन पाई को इस तरह।)। लिखते हैं। चवन्नी का एक चिह्न है जिसके लिये एक पाई खींच देते हैं, जो अंग्रेजी में एक का चिह्न है वह इस तरह हिन्दी में चवन्नी।) का चिह्न है। अगर इसको बिकारी वक्र रेखा के बाद खींचा जाये तो एक पैसा हो जाता है।

हमने अपनी गिनती को यहां डेवेलप किया था, इसका विकास यहां किया था। क्या हम इस विकास के बाद इसे ठुकरा सकते हैं? कहा जाता है कि इंडस्ट्री नष्ट हो जायेगी और हमारी फौज़ में गड़बड़ी पड़ जायेगी। मैं कहता हूं कि इंडस्ट्री में क्या दिक्कत पड़ने वाली है। जो कुछ मशीनरी हमें बाहर से मंगवानी पड़ेगी उसके लिये हम उनको डिज़ाइन दे देंगे। मामूली व्यापारी डिजाइन भेज देते हैं और बाहर से साढ़ियां और दूसरी चीजें बाहर विदेशों से बन कर चली आती हैं और क्या विदेशों से ही हमारी सारी चीजें हम मंगवाते रहेंगे? हम उनको यहां ढालेंगे

और उनको अपने अंक देंगे। हमारे अंक हमारे लिये सौभाग्य वाले हैं। हम लोग बड़ी संस्कृति के लोग हैं, हमारा एक बड़ा इतिहास है, हम दूसरों के सामने घुटने टेकने नहीं जा रहे हैं कि तभी काम चलेगा। हम सब चीजें डेवेलप कर सकते हैं। हमारा देश उनके डेवेलप करने में समर्थ है।

अब जिन भाइयों को हिन्दी के सीखने में कठिनाई होती है तो वह देखेंगे कि हिन्दी अत्यन्त सुगम भाषा है। लेकिन यह सही है कि जितना जाल शासन चक्र में अंग्रेजी का फैला हुआ है उसके कारण हम चाहें कि कल ही हिन्दी हो जाये तो उसमें कठिनाई होगी। मुझे दूसरे भाइयों के मुकाबले में हिन्दी बोलने में आसानी होती है। इस दृष्टि से अवश्य ही कुछ वर्ष उन भाइयों को देने होंगे जिससे कि वे अच्छी तरह से हिन्दी भाषा में, अच्छी मुहावरेदार भाषा में अपनी बातें कह सकें। वे उसी भाषा में सोच सकें, उसी में रो सकें, और उसी में गा सकें। भाषा वही होती है जिसमें गाया जा सके और रोया जा सके और इसके लिये समय चाहिये। इसको अच्छी तरह से सीखने के लिये समय चाहिये। तो इसके लिये समय देना आवश्यक है और वह समय पन्द्रह वर्ष का पर्याप्त समय है। मैं समझता हूं कि इतने समय में हम अच्छी तरह से अंग्रेजी को हटा सकते हैं और उसके आसन पर हिन्दी को बिठा सकते हैं यदि हम करना चाहें। हां, यदि ऐसा न करना चाहें तो और बात है। लेकिन करना चाहें तो कर सकते हैं। इसलिये मेरे संशोधन का पूरा हिस्सा यह है कि इस परिवर्तन-काल में जो बीच का समय आवेगा उसमें अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का बिठाने का प्रयत्न किया जाये। जिस तरह एक इमारत है तो अगर उसको हटा कर दूसरा मकान खड़ा करना है तो दूसरा प्रासाद बनाना होगा और उसके लिये 15 वर्ष का समय रखा गया है। उसमें आसानी से यह काम किया जा सकता है। अब इस काम को करे कौन? इसे सरकार करे। सरकार ऐसे कदम उठाये, यह उसके दूसरे हिस्से में लिखा है। अब यह कि कमेटी बना दे या कमीशन बिठा दे, इस तरह से सारे डिटेल्स दिये हुये हैं। जब हम इस दफा को पढ़ते हैं तो यह देखते हैं कि ड्राफटिंग कमेटी ने यह किया है कि जहां एक क्लाज था जो वहां एक दूसरा क्लाज और जोड़ दिया जाये। हर चीज का वह विस्तार करना चाहते हैं। कोई चीज आने वाली पार्लियामेंट के लिये या हुकूमत के लिये नहीं छोड़ना चाहते। हमने मताधिकार, बालिग मताधिकार, की योजना बनाई है। उनके प्रतिनिधि बाद में आवेंगे। और अपने तरीके पर वे सारे राष्ट्र की व्यवस्था करेंगे लोगों की तनख्वाहें क्या हों, कितने नौकर रखे जायें और किस तरह की सुविधायें उनको दी जायें, इन सब चीजों के सोचने का अवसर हम उन लोगों को देने के इच्छुक नहीं हैं। डरते हैं कि कहीं वे पढ़े लिखे लोग आ जावेंगे, कहीं गड़बड़ न हो जाये। ज्यूडिशियरी के सारे प्रावीजन्स, उनके मकान केसे हों, तनख्वाह क्या हों, वह क्या काम करें यह सब बातें यहां रख दी गई हैं। वही प्रकृत्ति यहां मुझे नज़र आती है। कमीशन होगी, कमेटी बनेगी, एक्ट, बिल, रैग्यूलेशन्स सब दूसरे प्रान्तों में भी अंग्रेजी में निकलेंगे। बहुत से सूबों में हिन्दी चल रही है, बहुत मजे में चल रही है, अच्छी तरह से और सफलता से चल रही है, लेकिन आप इस तरह से उतारू हैं कि उनको भी इसमें रख देना चाहते हैं।

श्री गोपालस्वामी अयंगर जैसे मनीषी विद्वान, पंडित, वयोवृद्ध और अनुभवी व्यक्ति का जो संशोधन है उसमें कोई सुधार करने की चेष्टा करना मेरे जैसे आदमी

[श्री अलगू राय शास्त्री]

के लिये दु:साहस मात्र ही है। लेकिन मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि क्या यह बात इस तरह से ठीक नहीं हो जाती कि भावी सरकार के लिये यह छोड़ दिया जाये, वह ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे हिन्दी पन्द्रह वर्ष में, अंग्रेजी का स्थान ले ले और इस देश में अपनी भाषा का राज्य हो जाये। जनता के प्रतिनिधियों का राज्य तो हुआ, किन्तु जनता की भाषा का भी राज्य हो जाना चाहिये। प्रत्येक प्रान्त में देखा जाये तो अधिकतर बोले जाने के कारण जनता की भाषा हिन्दी भाषा है।

कुछ लोग हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी, उर्दू और और चीजों को मिलाते हैं। मैं नहीं समझता नजीर जो आगरे के बड़े सुन्दर कवि थे और जिन्होंने लिखा है:

"अब्र था छाया हुआ और फसल थी बरसात की।
थी ज़मीं पहने हुये वर्दी हरी बानात की।।

हिन्दी से बाहर की चीज़ कैसे कहा जा सकता है? उनकी यह कविता हिन्दी है और हिन्दी का ही एक स्टाइल है, एक ढंग है, एक पद्धति है। "रब का शुक्र अदा कर भाई, जिसने हमारी गाय बनाई" यह कोई मेरठ के एक मौलवी साहब थे जिनकी लिखी किताबों में हमने पढ़ा है। इसको क्या हम हिन्दी क्षेत्र से बाहर निकालने वाले हैं? जो मौलवी साहब हैं, मौलाना साहब हैं उनके मुंह में लामुहाला ऐसे शब्द आवेंगे और आते हैं और वह हज़म हो गये हैं। वह सब शब्द बने रहेंगे। वह सब हिन्दी का स्टाइल है और हिन्दी के बाहर की यह भाषा नहीं है।

कुछ लोग उर्दू को एक भाषा कहते हैं। उर्दू कोई रीजनल भाषा नहीं है, किसी एक क्षेत्र की भाषा नहीं है, किसी एक बिरादरी की भाषा नहीं है। कुछ लोग उर्दू के अल्फाज़ भी बोलते हैं। मेरी शिक्षा मौलवी साहब के यहां हुई थी, मौलवी साहब मुझे पढ़ाते थे:

"फकत तफावत है नाम ही का,
दरअसल सब एक ही हैं यारो।
जो आब साफी के मौज में हैं,
उसी का जलवा हुबाब में है।।
"काबिले कुर्ब नहीं बे अदबों की सुहबत,
दूर रह उनसे दिला जिनको तेरा पास नहीं।।"

तो इन शब्दों को आप कहां निकाल कर ले जाइयेगा?

***अध्यक्ष:** अब आप इनका काफी जिक्र कर चुके हैं।

***श्री अलगू राय शास्त्री:** तो यह सब शब्द हिन्दी में हैं, हम उनको निकाल नहीं देते।

मैं यह अर्ज़ कर रहा हूं कि दूसरी भाषाओं के जो प्रचलित शब्द हैं, उनको हम हिन्दी में इनक्लूड करते हैं और जो भाषा इन सबको इनक्लूड करती है, वह हिन्दी है। हिन्दी के कनटेंट्स के बारे में कुछ शब्द कह कर समाप्त करता हूं। हिन्दी है क्या, इसका बड़ा वाद-विवाद है। हिन्दी, हिन्दी है, और क्या कहा जाये। हिन्दी हिन्दी है, और इससे अधिक परिभाषा उसकी नहीं की जा सकती। यह उसी प्रकार है, जैसे मैं कहूं 'आइ एम व्हाट आइ एम'। मैं वही हूं, जो हूं "इदमहंय एडस्मि सोऽस्मि" मैं वह हूं जो हूं। अब इसको क्या डिफाइन किया जाये। भोजपुरी, मिथिला, खड़ी बोली और ब्रजभाषा सब हिन्दी है। "सर बिनु सरसिज, सरसिज बिनु सर। की सरसिज बिनु सूरे।।" मिथिला की यह भाषा हिन्दी है। और यह भी हिन्दी है जो ब्रजभाषा में "अंखिया हरि दर्शन की प्यासी"। यह भी हिन्दी में है जो मेरठ में "रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।" कौन मना करता है कि हिफ़ज़र रहमान साहब को, जो चाहें वे बोल सकते है उस पर वाद-विवाद नहीं है। देवनागरी लिपि में वह सब लिख लिया जा सकता है, और उसको देश के अधिकांश आदमी समझते हैं। न्यूमरल्स अंक, का झगड़ा बिला वजह है। न्यूमरल्स या अंक तो देवनागरी लिपि में इन्क्लूडेड हैं। उनको हम अलग नहीं कर सकते हैं और उनको हमें स्वीकार कर लेना चाहिये। और सरकार के ऊपर यह सारी बातें छोड़ दी जायें कि जैसा उचित समझे करे, कमीशन बनाये, कमेटी बिठाये, ताकि पन्द्रह वर्ष के बाद हिन्दी देवनागरी लिपि में अंग्रेजी का स्थान ले ले। इसके साथ मैं अपने संशोधन को आपकी सेवा में रखता हूं। इस पन्द्रह वर्ष की अवधि में अंग्रेजी चलती रहे। मेरे विचार में विधान में यह धारा होनी चाहिये कि हमारे राष्ट्र की भाषा हमारी सरकारी भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। पन्द्रह वर्ष के अन्तर्कालीन समय में अंग्रेजी चलती रहे, लेकिन उस अवधि के खत्म होने पर हिन्दी अपना पूर्ण स्थान ले सके। इन पन्द्रह वर्षों में सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिये। कि ऐसा ढंग निकाले जिसमें हिन्दी अंग्रेजी का पूर्णतया स्थान ले सके। अंग्रेजी भाषा से हमें कोई द्वेष नहीं है। बाद के काल में भी हमारे यहां अंग्रेजी भाषा की यूनिवर्सिटियां होंगी, हमारे दूत भिन्न भिन्न भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे लेकिन वे हस्ताक्षर, संधिपत्र वगैरह पर, अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही करेंगे। वह राष्ट्रीय भाषा हिन्दी होगी और लिपि देवनागरी होगी, जिसको हमने ऋग्वेद में पाया है और जिसका शब्द समुद्र उस महासमुद्र से निकला है और जिस को लेकर यह पनपी है और जिसने संसार को जीवन दिया है और जिसका साहित्य, दर्शन-शास्त्र दुनिया की किसी भाषा के मुकाबले में कम नहीं है। इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं और आपको धन्यवाद देता हूं जो आपने मुझे इतना समय दिया।

***माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हम एक ऐसे विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं जिसका भारत के किसी एक प्रान्त के लोगों के लिये नहीं बल्कि भारत के करोड़ों निवासियों के लिये बहुत महत्व है। श्रीमान्, यदि हम थोड़ी देर के लिये मतभेद की बातों को भुला दें तो हम देखेंगे कि जिस प्रकार का निर्णय हम करने जा रहे हैं वैसा निर्णय करने का प्रयास भारत के कई सहस्त्र वर्षों के इतिहास में कभी भी नहीं किया गया। इसलिये आरम्भ में ही हम यह समझ लें कि हमने एक ऐसी बात हासिल की है जिसे हमारे पूर्वज हासिल नहीं कर सके थे।

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ सदस्य आवेश में बोले हैं और उन्होंने मतभेद की बातों पर ही अधिक जोर दिया है। मैं मतभेद की बातों के संबंध में कुछ शब्द बाद को कहूंगा। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस अवसर के अनुरूप उच्च निर्णय करे और अपनी मातृभूमि में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में वास्तविक योग दे ताकि हम सभी और आने वाली पीढ़ियां उस पर गर्व कर सकें।

भारत बहु-भाषा-भाषी देश रहा है। यदि हम प्राचीन इतिहास का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि इस देश में कोई भी व्यक्ति एक ही भाषा को सभी लोगों से कभी भी नहीं मनवा सका है। मेरे कुछ मित्रों ने उच्च स्वर में कहा कि एक दिन ऐसा आयेगा जब भारत में एक ही भाषा होगी। सच पूछिये तो मेरी यह धारणा नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना की उपेक्षा कर रहा हूं क्योंकि राष्ट्रीय एकता की शिला पर ही भविष्य की नींव रखी जा सकती है। देश के राष्ट्रीय जीवन में इन तत्वों को स्थान देकर ही एकता स्थापित करनी चाहिये क्योंकि इस समय इनका बहुत महत्व है। इन्हें आत्म सम्मान तथा पारस्परिक सामंजस्य के साथ सजीव रखने की आवश्यकता है। यह भारत का वैभव है कि इस देश के उत्तर से दक्षिण तक पश्चिम से पूर्व तक इतनी अधिक भाषाएं हैं जिनमें से प्रत्येक ने भारतीय जीवन तथा भारतीय सभ्यता को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में योग दिया है।

यदि किसी का यह दावा है कि भारतीय संविधान के एक अनुच्छेद को पारित करने से सभी लोग एक भाषा को स्वीकार करेंगे और उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य किये जायंगे तो श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह सम्भव नहीं है (वाह, वाह)। अनेकता में एकता ही भारतीय जीवन की विशेषता रही है। इसे समझौते तथा सहमति से प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये यथोचित वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। यदि मैं किसी हिन्दी भाषी प्रान्त का निवासी होता तो आज मुझे इस पर गर्व होता कि इस सभा के लगभग सभी सदस्य देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को भारत की राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये हैं। यह एक ठोस बात हासिल की गई है। और मुझे आशा है कि हिन्दी-भाषी प्रान्तों के मेरे मित्र इसके महत्व को समझेंगे।

अन्य भाषाओं के लिये जो दावे किये जा सकते हैं उनकी चर्चा मैं नहीं कर रहा हूं। यदि मुझे अकेले अपनी इच्छानुसार किसी भाषा को चुनने दिया जाता तो मैं संस्कृत को चुनता। आज लोग संस्कृत पर हंसते हैं सम्भवत: इस कारण कि वे यह समझते हैं कि किसी आधुनिक राज्य को जो कार्य करने होते हैं उनके लिये वह काम में नहीं लाई जा सकती। मैं संस्कृत के पक्ष में बोल कर आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं इसके लिये पूर्णतया सक्षम नहीं हूं किन्तु मैं यह कह सकता हूं कि इस भाषा में अब भी ऐसा वृहत् ज्ञान भंडार है जिससे भारत की वर्तमान पीढ़ी ने ही नहीं बल्कि पहले की पीढ़ियों ने भी ज्ञानोपार्जन किया और वास्तव में उससे सभ्य संसार में ज्ञान और विद्या के सभी प्रेमियों ने ज्ञान प्राप्त किया। वह हमारी भाषा है, वह भारत की मातृ-भाषा हैं हम उसके

प्रति केवल मौखिक सहानुभूति अथवा आदर प्रदर्शित करने के लिये नहीं किन्तु अपने राष्ट्र के हित साधन के लिये तथा अपने आत्मसाक्षात्कार के लिये और यह ज्ञान प्राप्त करने के लिये कि प्राचीन काल में हमने कौन सी विधि संचित की थी और भविष्य में भी कर सकते हैं, वास्तव में चाहते हैं कि भारत की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में उसे सम्मानित स्थान प्राप्त हो।

मैं इसी प्रकार अन्य भाषाओं को स्वीकार करने के पक्ष में तर्क नहीं उपस्थित कर रहा हूं। यदि मैं यह कहूं कि मुझे अपनी भाषा पर गर्व है तो मुझे आशा है कि आप इसे प्रान्तीयता नहीं कहेंगे। वह एक ऐसी भाषा है जो केवल बंगालियों की भाषा नहीं रही है। पिछली कई शताब्दियों में कई प्रतिष्ठित लेखकों ने उसे धनी बनाया है और वह 'बन्दे मातरम्' की भाषा है। हमारे राष्ट्रीय कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने बंगला में अपनी महान रचनाओं तथा अपने विचारों को संसार के सामने रख कर भारत का नाम तथा प्रतिष्ठा बढ़ाई (वाह, वाह)। वह आपकी भाषा है। वह भारत की भाषा है (वाह, वाह)। मुझे विश्वास है कि दक्षिण भारत के तथा पश्चिमी भारत के मेरे मित्रों की भाषाओं में भी, जिनका उन्हें बहुत गर्व है, महान रचनायें हैं और उनकी भी यथेष्ट रक्षा होनी चाहिये। सभी को यह समझना चाहिये कि इस संविधान में कोई ऐसी बात नहीं रखी गई है जिससे इनमें से कोई भी भाषा नष्ट हो जायेगी अथवा अशक्त हो जायेगी।

हम हिन्दी को क्यों स्वीकार कर रहे हैं? इसलिये नहीं कि वह सबसे उत्कृष्ट भारतीय भाषा है। हम उसे मुख्यत: इस कारण स्वीकार कर रहे हैं कि इस भाषा के बोलने वालों की संख्या अन्य किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या से अधिक है। यदि 32 करोड़ लोगों में से 14 करोड़ यदि किसी एक भाषा को समझते हों, और उसका विकास भी हो सकता है, तो हम कहते हैं कि वह भाषा स्वीकार की जाये किन्तु उसे इस प्रकार अपनाया जाये कि अन्तरिम काल में राजकीय कार्य शिथिल न हो जाये और किसी काल में भी भारत की तथा उसकी अन्य महान भाषाओं की प्रगति शिथिल न हो। हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने आपके सामने जो योजना रखी है उसमें कुछ ऐसे सिद्धान्त सन्निहित हैं जिससे हमारे विचार से हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और वह केवल दक्षिण भारत के लोगों के लिये ही हितकर प्रमाणित नहीं होगा बल्कि सारे भारत के लिये हितकर प्रमाणित होगा (वाह, वाह)।

आपको अंग्रेजी को हटाने के लिये पन्द्रह वर्ष दिये गये हैं। वह किस प्रकार हटाई जाये? उसे उत्तरोत्तर हटाते जाना होगा। हमें वस्तु-स्थिति को ध्यान में रखकर इस संबंध में निर्णय करना होगा कि कुछ विशेष कार्यों के लिये अंग्रेजी को भारत में जारी रखा जाये या नहीं रखा जाये। मेरे कुछ मित्र बता चुके हैं कि हमने कुछ कारणों से भले ही अंग्रेजी शासन से भारत को मुक्त किया हो किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अंग्रेजी भाषा का भी बहिष्कार करें। हम अंग्रेजी शिक्षा की भलाइयों को तथा बुराइयों को भी अच्छी प्रकार समझते हैं। हम निरपेक्ष होकर तथा अपने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस संबंध में निर्णय करें कि भविष्य में अंग्रेजी को कैसे प्रयोग किया जायेगा। आखिर उसी भाषा के माध्यम

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

से हमने कई बातें हासिल कीं। अंग्रेजी से केवल राजनैतिक एकता ही स्थापित नहीं हुई जिसके फलस्वरूप हम राजनैतिक स्वातंत्र्य प्राप्त कर सके बल्कि उसने हमारे लिये संसार के कई भागों की सभ्यता के द्वार भी खोल दिये। विशेषत: विज्ञान और कला के क्षेत्रों में उसने हमारे लिये उस ज्ञान-भंडार के द्वार खोल दिये जिसे हम अन्य किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते थे। आज हमारे वैज्ञानिकों ने तथा कला-संबंधी विशेषज्ञों ने जो कुछ कर दिखाया है उसका हमें गर्व है।

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यदि हम इस देश में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के प्रश्न की संकुचित दृष्टिकोण से परीक्षा करेंगे तो हम आत्म-लाघव का अनुभव करेंगे। यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अंग्रेजी भाषा राजनैतिक प्रयोजनों के लिये प्रयोग की जायेगी अथवा राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में उसकी प्रधानता रहेगी। यह हमारा, अर्थात् स्वतंत्र भारत के लोगों के प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य होगा कि हम इस संबंध में निर्णय करें कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उत्तरोत्तर किस प्रकार प्रयोग में लाया जाये और अंग्रेजी को किस प्रकार त्यागा जाये। यदि हमारी यह धारणा हो कि कुछ प्रयोजनों के लिये हमेशा अंग्रेजी ही प्रयोग में आये और उसी भाषा में शिक्षा दी जाये तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। कुछ ऐसे विषय हैं जिनके संबंध में हम साहस से बोल सकते हैं—व्यक्तिगत अथवा वर्गीय हित के लिये नहीं बल्कि जहां हम यह समझते हों कि अमुक अमुक कदम उठाने से सारे देश का हित साधन होगा।

श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में संशोधन में यह प्रस्तावित है कि संविधान में ही भारत की मुख्य-मुख्य प्रादेशिक भाषाओं की सूची का समावेश कर दिया जायेगा। मुझे आशा है कि हम उस सूची में संस्कृत का भी उल्लेख करेंगे। मैं साफ़ बातें कहना चाहता हूं। ऐसे प्रान्तों के लोगों को, जहां हिन्दी नहीं बोली जाती, हिन्दी के संबंध में घबराहट क्यों है? यदि हिन्दी के समर्थक मुझे क्षमा करें तो मैं कहूंगा कि यदि हिन्दी को प्रयोग में लाने की अपनी मांग को उपस्थित करने में वे इतना जोर न दिखाते तो वे जो कुछ चाहते हैं वह उन्हें मिल जाता और भारत की सारी जनता हृदय से उनके साथ सहयोग करती और वास्तव में वे जिन बातों की आशा भी नहीं करते हैं वे भी उन्हें प्राप्त हो जातीं। किन्तु दुर्भाग्य से भय प्रकट किया जा चुका है और कुछ भागों में उसे कार्य रूप में प्रकट किया गया है, जहां उन भाषाओं के बोलने वालों को, जो किसी प्रकार भी हिन्दी से निम्न कोटि की नहीं हैं, वह सुविधायें नहीं दी गई हैं जिनसे उन्हें घृणित वैदेशिक शासन ने भी वंचित नहीं रखा।

जो लोग इस संविधान-सभा में हिन्दी-भाषी प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं उनसे मेरा निवेदन है कि वे यह स्मरण रखें कि हमारी हिन्दी को स्वीकार करने पर उन पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि कुछ सप्ताह पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिन्दी भाषी प्रान्तों में एक या एक से अधिक भारतीय

भाषाओं की अनिवार्य शिक्षा के लिये प्रबन्ध किया जायेगा। (एक माननीय सदस्य: वह एक पवित्र प्रस्ताव ही है!) वह एक पवित्र प्रस्ताव मात्र न रहे। यह पंडित गोविन्द बल्लभ पंत, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, बाबू श्री कृष्ण सिन्हा और पंडित रविशंकर शुक्ल जैसे नेताओं की जिम्मेदारी है कि वे भविष्य में कुछ महीनों में ही अपने क्षेत्रों में, विशेषत: जब वहां हिन्दी से अन्य भाषाओं के बोलने वाले लोग हैं, महत्वपूर्ण प्रादेशिक भाषाओं की स्वीकृति के लिये प्रबन्ध करें और यदि आवश्यकता हो तो विधि द्वारा यह प्रबन्ध करें। मैं यह दिलचस्पी से देखता रहूंगा कि ये सुविधायें किस प्रकार दी जाती हैं और बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन के नेतृत्व में एकमत से जो प्रस्ताव पारित हुआ है वह बिहार और संयुक्तप्रान्त जैसे प्रान्तों में किस प्रकार प्रयोग में आता है।

श्रीमान्, इसकी बहुत चर्चा की गई है कि हिन्दी का क्या अर्थ है। किसी भाषा के विकास के संबंध में न तो कोई कृत्रिम राजनैतिक शक्तियां उत्पन्न की जा सकती हैं और न कोई विधि के उपबन्ध रखे जा सकते हैं। विवादों के होते हुये भी और प्रतिष्ठित तथा प्रभावशील व्यक्तियों के होते हुये भी, भाषा का विकास प्राकृतिक रूप से होता है। लोगों के संकल्प से परिवर्तन होते हैं और वे प्राकृतिक रूप से तथा अनजाने होते हैं। संविधान-सभा के किसी प्रस्ताव से किसी भाषा का प्रभुत्व नहीं स्थापित होता। यदि आप यह चाहते हैं कि हिन्दी सारे भारत में अपनायी जाये और केवल कुछ राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी का स्थान न ले तो आप हिन्दी को इस योग्य बनाइये और उसमें प्राकृतिक रूप से न केवल संस्कृत से किन्तु उसकी भगिनी रूप अन्य भारतीय भाषाओं से भी शब्द आने दीजिये। हिन्दी के विकास को कुंठित न कीजिये। मैं अपने बंगाली ढंग से हिन्दी बोल सकता हूं। महात्मा गांधी अपने ढंग से हिन्दी बोलते थे। सरकार पटेल अपने गुजराती ढंग से हिन्दी बोलते हैं। यदि संयुक्तप्रान्त अथवा बिहार के मेरे मित्र यह कहें कि उनकी हिन्दी ही प्रामाणिक हिन्दी है और कोई जो इस प्रकार की हिन्दी नहीं बोल सकेगा। उसका बहिष्कार किया जायेगा तो यह न केवल हिन्दी के लिये बल्कि सारे देश के लिये एक बुरी बात होगी। इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद के मसौदे में इस संबंध में उपबंध रखे गये हैं कि इस देश में इस भाषा का विकास किस प्रकार होगा।

मुझे आशा है कि भारत-सरकार एक भाषा-परिषद् स्थापित करेगी और प्रदेशों में भी इसी प्रकार की परिषदें स्थापित की जायेंगी जहां हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का सुचारु रूप से अध्ययन किया जायेगा, साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा और सभी भाषाओं की चुनी हुई रचनाओं को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराने का प्रबन्ध किया जायेगा और जहां वाणिज्यिक औद्योगिक वैज्ञानिक और कला संबंधी शब्दों को निरपेक्ष रूप से निश्चित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया जायेगा। इस संबंध में हम संकुचित दृष्टि से कार्य न करें। मैं अपने विश्वविद्यालय में अपनी मातृ-भाषा को यथोचित स्थान प्राप्त करने में अपना तुच्छ योग दे चुका हूं। इस कार्य को साठ वर्ष पूर्व मेरे आदरणीय पिता ने आरम्भ किया था और पन्द्रह वर्ष पहले उसे सम्पूर्ण करने का भार मुझे उठाना पड़ा। कलकत्ते के लोगों ने बिना किसी संकोच के सभी भारतीय भाषाओं को स्वीकृति प्रदान कर दी। हमने अपने शब्दों को किसी संकुचित भावना से प्रेरित होकर नहीं चुना

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

बल्कि भविष्य की प्रगति को ध्यान में रखकर चुना। यदि आज यह कहा जाता है कि कला-संबंधी सभी शब्द हिन्दी के हों तो आप इस व्यवस्था को उन प्रान्तों में अपनायें जहां हिन्दी बोली जाती है। बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास का क्या हाल होगा। क्या वे भी अपने राज्यों की भाषाओं के कला-संबंधी शब्द प्रयोग करेंगे? यदि यह हुआ तो विभिन्न राज्यों के विचारों तथा शिक्षा-संबंधी सुविधाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान का क्या होगा। उन लोगों का क्या हाल होगा जो आगे की शिक्षा के लिये विदेश जाते हैं? मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इन प्रश्नों पर विचार करें। हम भावना के आवेश में न बहें। कुछ भावनाओं पर मैं अवश्य गर्व करता हूं। मुझे इसकी चिंता है कि एक ऐसी भाषा अस्तित्व में आ जाये जिसे भारत के सभी लोग न केवल बोलें और लिखें बल्कि जिसमें भारत सरकार का राजकीय कार्य भी किया जाये। हम इसके लिये सहमत हो गये हैं कि वह भाषा हिन्दी होगी। किन्तु उसका पग पग पर इस प्रकार समायोजन करने की आवश्यकता है कि हमारे राष्ट्रीय हितों की हानि न हो और राज्यों की भाषाओं के हितों की भी हानि न हो। यदि आप इस प्रकार कार्य करेंगे तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि हमें पन्द्रह वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी और सभी प्रान्तों के लोग हमारे निर्णय को सहर्ष स्वीकार करेंगे और प्रयोग में लायेंगे।

अन्त में मैं कुछ शब्द अंकों के संबंध में कहूंगा। अंकों के संबंध में बहुत कुछ कहा गया है। अंकों को लेकर हम एक छोटे-मोटे युद्ध में संलग्न हैं। किन्तु जो प्रस्ताव रखा गया है वह केवल दक्षिण-भारत के लोगों के हित साधन के लिये नहीं रखा गया है। इसे सभा के प्रत्येक वर्ग को समझना चाहिये। जब तक हम कोई अन्य निर्णय न करें, अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को जारी रखना, जो थोड़ा बहुत रूप बदल कर अपने जन्म स्थान को लौट आये हैं कई वर्षों तक हमारे हित-साधन के लिये बहुत आवश्यक है। बाद को आयोग की सिफारिशों के आधार पर यदि राष्ट्रपति की यह धारणा हुई कि परिवर्तन करने की आवश्यकता है तो परिवर्तन किया जा सकता है। आंकड़ों के संबंध में, वैज्ञानिक कार्य के संबंध में, वाणिज्यिक उपक्रमों, बैंकों, लेखों, लेखापरीक्षाओं तथा अन्य बातों के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों की आवश्यकता पड़ेगी।

मेरे कुछ मित्र मुझसे पूछते हैं कि जब आप पूरी हिन्दी भाषा को स्वीकार कर रहें हैं और जब कुछ अंक समान ही हैं तो आप कुछ और अंकों को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? प्रश्न तीन या चार अंकों को सीखने का नहीं है। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी अंकों से भी परिचित होगा और वे आरम्भ से ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं। किन्तु प्रश्न तो उनको ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग में लाने का है जिनके लिये वे यथोचित रूप से प्रयोग में नहीं लाये जा सकते।

मेरे कुछ हिन्दी भाषी मित्र मुझसे पूछते हैं, आप हमें अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग में लाने के लिये क्यों बाध्य करते हैं, हम बिहार, मध्यप्रान्त अथवा संयुक्त-प्रान्त में, जहां की राज-भाषा हिन्दी ही होगी, हिन्दी के अंकों को निषिद्ध नहीं

कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि कई कार्यों के संबंध में हिन्दी अंक प्रयोग में आयेंगे। यदि आप अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को भी सीख लेंगे और सारे भारत के राजकीय कार्यों के लिये उन्हें काम में लायेंगे तो क्या हानि होगी? वास्तव में आपको, विशेषत: उच्च-शिक्षा के संबंध में, उनसे लाभ होगा। मैं बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन से अपील करता हूं कि वे समयोचित कार्य करें। यह कोई ऐसा विषय नहीं है जो बहुमत से स्वीकार किया जाये। भले ही उनके पक्ष के कुछ लोगों की यह धारणा हो कि अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय अंक प्रयोग में न आयें और हिन्दी अंकों के साथ उन्हें भी स्वीकार न किया जाये, और भले ही उनकी स्वयं यह धारणा हो कि यह प्रस्ताव न्यायपूर्ण नहीं है, और भले ही वह उन्हें पसंद न हो, किन्तु चूंकि उनके प्रान्त की भाषा हिन्दी को भारत के सभी लोग स्वीकार कर रहे हैं वे राजनीतिज्ञता का परिचय दें और उठ कर यह कहें कि उनकी अपनी भावनायें चाहे जो कुछ भी हों किन्तु उन्हें यह समझौता मान्य है और वे इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं।

हम पिछले वर्षों में इस सभा में कई महत्वपूर्ण प्रस्तावों को पारित कर चुके हैं। हमने साथ-साथ कई संकटों का सामना किया है। यदि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा में, जिसमें केवल एक ही राजनैतिक दल का बोल बाला है, अंकों जैसे प्रश्न के संबंध में मतभेद हो गया तो यह एक लड़कपन की बात होगी। हम अपनी तथा सारे भारत की हंसी करायेंगे और अपने शत्रुओं को बल प्रदान करेंगे। हम अपने मतभेदों पर जोर न देकर अपने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में हमने जो कुछ हासिल किया है उस पर जोर दें। हम संसार को यह बता दें कि हमने यह निर्णय एकमत से और बिना किसी कटुता के किया है। हम इस प्रश्न पर राजनैतिक दृष्टि से विचार न करें।

यह एक दु:ख की बात है कि कुछ क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने से एक कठिन राजनैतिक समस्या उठ खड़ी होगी। इन प्रान्तों के नेताओं को ही साहस करके यहां उठ कर यह कहना है कि वे भारत के हित को ध्यान में रखकर इस समझौते को स्वीकार करते हैं और वे सबका साथ देने के लिये तैयार हैं। यदि नेता यह कह देंगे तो मुझे इस संबंध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि लोग भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे। हमने किसी ऐसे प्रान्त में, जहां के विधान-मंडल हिन्दी अंकों को प्रयोग में लाने का निश्चय करें, उनके प्रयोग को, अथवा अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये भी उनके प्रयोग को, निषिद्ध नहीं किया है। हमने केवल यह सिफारिश की है कि एक ऐसा सूत्र स्वीकार किया जाये जो सभी के लिये न्यायपूर्ण हो। मुझे आशा है कि वादानुवाद के समाप्त होने के पूर्व सभी विचार धाराओं के प्रतिनिधि आपस में विचार-विमर्श करके सभा के सामने यह घोषित करेंगे कि श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर का प्रस्ताव एक मत से स्वीकार किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** सभा चार बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये अपराह्न के चार बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

संविधान-सभा दोपहर के भोजन के पश्चात् 4 बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

***अध्यक्ष:** हम बहस जारी रखेंगे। श्री चक्को।

***श्री पी.ए. चाको** (त्रावणकोर और कोचीन का संयुक्तराज्य): श्रीमान्, मेरा यह मत है कि अंग्रेजी के लिये जो भी समय निश्चित किया गया था उस समय तक वह रहे और राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को भावी संसद् हल करे। राष्ट्र-भाषा का विकास होता है, यह कृत्रिम रूप से नहीं बनाई जा सकती। भारत जैसे महान देश की राष्ट्र-भाषा में कुछ आधारभूत बातें अवश्य होनी चाहियें। वह आधुनिक सभ्यता की सभी आवश्यक बातों को व्यक्त करने में समर्थ होनी चाहिये। आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उस भाषा में पर्याप्त वैज्ञानिक साहित्य होना चाहिये। विचारों का माध्यम होने के कारण भाषा से ही मस्तिष्क का भी विकास होता है। विचारक की भाषा पर ही उसके विचारों की गहनता तथा उसके विचारों का विकास बहुत कुछ निर्भर करता है। प्रत्येक भाषा की अपनी शब्दावली अपनी वाक्य रचना तथा अपनी विचार परम्परा होती है।

कोई व्यक्ति जो केवल आरम्भिक भाषा को ही जानता है उस व्यक्ति के समान विचार नहीं रख सकता जो कि एक सुविकसित भाषा को बोलता है। भारत जैसे महान देश की राष्ट्र-भाषा भी महान होनी चाहिये। भारत की कुछ भाषाओं में वास्तव में बहुत सुन्दर साहित्य है। किन्तु श्रीमान्, मेरे विचार से किसी भी भारतीय भाषा में अच्छा वैज्ञानिक साहित्य नहीं है। हमारी किसी भी भारतीय भाषा में रसायन, भौतिक विज्ञान तथा अन्य विज्ञानों की शिक्षा देना असम्भव है। तुरंत ही प्रयोग में लाने के लिये किसी भाषा को कृत्रिम रूप से नहीं गढ़ा जा सका। उसका विकास होना आवश्यक है। किन्तु इसके लिये समय की आवश्यकता होती है। यदि हम भारत की वर्तमान भाषाओं में से किसी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करेंगे तो हम राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में बाधा डालेंगे। वह हमारी उच्च शिक्षा के लिये बाधक सिद्ध हो सकती है। इस समय हमें वैज्ञानिक खोज की आवश्यकता है। किन्तु वह भाषा उसके लिये भी बाधक सिद्ध हो सकती है। इसलिये मेरे विचार से हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब भारत की कोई भाषा विकसित तथा पुष्ट होकर हमारे सामने आयेगी। तब हम उसे अपनी राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में अपना सकते हैं।

अंग्रेजी बहुत ही व्यंजना-सम्पन्न, शब्द-सम्पन्न तथा सरल और सुबोध भाषा है। उसके लिये यह भी सिफारिश की गई है कि उसे सहायक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। उसके स्थान पर किसी अन्य भाषा को रखना असम्भव है। सम्भवत: शैक्सपियर ने इंग्लिस्तान की राष्ट्र-भाषा को हमेशा के लिये निश्चित कर दिया और इटली की राष्ट्र-भाषा को दान्ते ने निश्चित कर दिया। इसी प्रकार भविष्य में कोई प्रतिभाशाली साहित्यिक भारत की राष्ट्र-भाषा को भी निश्चित करेगा।

राष्ट्र-भाषा केवल पारस्परिक समझौते से ही निश्चित की जा सकती है। मेरा विश्वास है कि वह मत लेकर निश्चित नहीं की जा सकती। कोई भी भाषा लोगों पर थोपी नहीं जा सकती। अभी तक कोई भी राष्ट्र बहुसंख्यकों की भाषा को अल्पसंख्यकों पर थोपने में सफल नहीं हुआ है। जारों के रूस में लिथुआनिया की भाषा को बोलने की बिल्कुल मनाही थी और इस संबंध में जो विधि थी उसे तोड़ने के लिये कठोर दंड दिया जाता था और कभी-कभी मृत्यु-दंड भी दिया जाता था। किन्तु दो शताब्दियों के अनन्तर जब लिथुआनिया ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की तो यह ज्ञात हुआ कि 93 प्रतिशत लोग फिर भी लिथुआनिया की भाषा बोलते थे। इसी प्रकार स्पेन में 1923 में कटालान भाषा निषिद्ध घोषित कर दी गई किन्तु 1932 के संग्राम के पश्चात् स्पेन को उस भाषा को स्वीकार करना पड़ा।

हम यह भी जानते हैं कि इसके विपरीत इंग्लिस्तान में क्या हुआ। इस समय भी इंग्लिस्तान में छह बोलियां बोली जाती हैं अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा के रूप में विकसित हो उठी और सभी लोगों ने खुशी से उसे स्वीकार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वैल्स में लोगों ने वैल्स को तथा स्काटलैंड में गेलिक का परित्याग कर दिया। इसी प्रकार हमें भी उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक इस समय की भारतीय भाषाओं में से कोई भाषा समुन्नत न हो जाये। हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक वह पुष्ट न हो जाये और उस स्थिति को प्राप्त न हो जाये जो राष्ट्र-भाषा के लिये आवश्यक है।

मेरे विचार से राष्ट्रभाषा के संबंध में निर्णय करने के पूर्व एक दो बहुत महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल करना आवश्यक है। श्रीमान्, पहला प्रश्न यह है कि हम एक भाषा को राज-भाषा के रूप में अपनायें अथवा कई भाषाओं को। स्विट्ज़रलैंड में लोग चार भाषायें बोलते हैं स्कूलों में वही भाषा शिक्षा का माध्यम होती है जिसे उस क्षेत्र के लोग बोलते हैं जहां स्कूल स्थित होता है। उच्च कक्षाओं में एक दूसरी राष्ट्र-भाषा को सीखना अनिवार्य होता है और फिर आगे चल कर एक तीसरी भाषा को भी। चारों भाषाओं को राज भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है।

युद्ध के पूर्व चेकोस्लोवाकिया में यद्यपि कुछ लोग बोलियों के साथ लगभग बारह भाषाओं को बोलते थे किन्तु दो भाषाओं को राज-भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया था। सरकारी दफ्तरों में, जो दफ्तर जिस क्षेत्र में होता था वहीं की भाषा वहां प्रयोग की जाती थी। अन्य कई देशों में भी एक से अधिक भाषाओं को राज-भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है।

इसलिये इस संबंध में निर्णय करने की आवश्यकता है कि हम एक भाषा को भारत की राज-भाषा के रूप में स्वीकार करें। अथवा कई भाषाओं को अर्थात् बंगला, तामिल, हिन्दी और अंग्रेजी को भी इस रूप में स्वीकार करें। यदि हम एक ही भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने का निर्णय करते हैं तो हमें इस संबंध में भी निर्णय करना होगा कि हमें संघीय सरकार को राज-भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा को प्रयोग में लाने देना चाहिये या नहीं। रूस में उदाहरणार्थ यूरोपीय रूस में ही असंख्य बोलियां के साथ-साथ 76 भाषायें बोली

[श्री पी.ए. चाको]

जाती हैं और केवल एक ही भाषा राज-भाषा है। किन्तु दफ्तरों में संबंधित प्रदेश की भाषा को भी प्रयोग किया जाता है। जहां कई भाषायें बोली जाती हैं और कई बोलियां भी बोली जाती हैं वहां इस संबंध में निर्णय करना होता है कि क्या संघ केवल एक ही राज-भाषा को प्रयोग करे अथवा क्या वह दफ्तरों में संबंधित प्रदेशों की भाषाओं को भी प्रयोग में लाने दे।

मैं यह बताना चाहता हूं कि आयरलैंड में अब भी सभी सरकारी कामों के लिये अंग्रेजी को ही काम में लाया जाता है। आयरलैंड के स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में वहां के लोग अंग्रेजी का विरोध करते थे। 1893 में एक गैलिक लीग स्थापित हुई जिसने आयरलैंड के स्वातंत्र्य संग्राम में प्रमुख भाग लिया। वहां के स्कूलों में आयरिश भाषा एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। यद्यपि आयरलैंड के लोग चाहते हैं कि केवल आयरिश भाषा ही राज-भाषा हो किन्तु आयरिश को अंग्रेजी का स्थान लेने में उन्हें बहुत कठिनाई हो रही है।

हम सभी लोग इस संबंध में बहुत कुछ सहमत ही हैं कि अंग्रेजी पन्द्रह वर्ष तक रहे। इसलिये यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है किन्तु इसे तुरन्त ही हल करने की आवश्यकता नहीं है। यह जनतंत्र का एक उत्तम सिद्धान्त है कि जब लोक-प्रतिनिधियों को अपने निर्णयों के संबंध में स्वयं संदेह हो तो उन्हें लोगों की इच्छाओं का आदर करना चाहिये। यद्यपि यह प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है किन्तु चूंकि इसे तुरन्त ही हल करने की आवश्यकता नहीं है इसलिये मैं यह प्रार्थना करता हूं कि हम लोगों के पास जाकर इस संबंध में उनकी आज्ञा प्राप्त करें। इसके लिये हमें इस प्रश्न को भावी संसद के हल करने के लिये छोड़ देना चाहिये।

जब हमें कई अन्य प्रश्न, जिनका देश के करोड़ों लोगों के जीवन से संबंध है, हल करने हैं तो हम इस प्रश्न के पीछे क्यों पड़े रहें? जब देश के स्वातंत्र्य के लिये वीरता से लड़ने वाले लोग खाने तथा मकान के बिना मर रहे हैं और व्यापार तथा वाणिज्य में दिन प्रतिदिन मन्दी आती जा रही है और बेकारी फैली हुई है जिसका शिकार मुख्यत: दक्षिण हुआ है और जब उत्तर भारत में काश्मीर का प्रश्न हल करना है और दक्षिण में साम्यवादी गुंडाशाही को दूर करना है यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि आज भी मेरे पास इस आशय का एक तार आया है, कि एक ऐसे कांग्रेस कर्मी का लड़का, जो पिछले बीस वर्षों से देश की सेवा करता रहा है, पिछले रविवार को एक साम्यवादी के छुरे का शिकार हो गया—और जब खाद्य के प्रश्न के हल पर देश का भविष्य ही निर्भर है तो यह आदरणीय सभा इस प्रश्न को हल करने में अपना समय नष्ट क्यों करे, क्योंकि इस सभा में लगभग सभी के सहमत होने पर यह निर्णय किया गया है कि इस प्रश्न का जो भी हल निकाला जायेगा उसे पन्द्रह वर्ष पश्चात् व्यवहार में लाया जायेगा।

अंकों जैसे छोटे प्रश्न के संबंध में हमें जिस हठधर्मी का परिचय मिला है, और इस सभा के एक वर्ग ने यह प्रमाणित करने के लिये कि जीवन के लिये सबसे उपयोगी वस्तु देवनागरी अंक ही है जिन विचारों को व्यक्त किया है, उन्हें

ध्यान में रखते हुये मेरे विचार से उचित यही होगा कि हम इस प्रश्न को अधिक गम्भीर लोगों के निर्णय के लिये छोड़ दें। हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियां अधिक सहिष्णु और बुद्धिमान होंगी और वे एकमत से इस प्रश्न को हल कर सकेंगी। हमारी असहिष्णुता के कारण भारत का विभाजन हो चुका है। जो कुछ रह गया है उसे अब हम न विभाजित करें। आने वाली पीढ़ियों पर किसी भाषा को न थोप कर हमें इस प्रश्न को उन्हीं के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल) : श्रीमान्, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के प्रश्न के कारण हमें कई प्रकार की आशंकायें होने लगी हैं। यदि मैं अपनी भावनाओं को नहीं व्यक्त करूंगा तो मैं अपने प्रति, अपने अन्त:करण के प्रति और अपने ईश्वर के प्रति सत्यनिष्ठा नहीं रख सकूंगा। पिछले तीन सप्ताहों से मैं कई आशंकाओं से पीड़ित रहा हूं और वे संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त के मेरे मित्रों की उद्दंड प्रवृत्ति के कारण और भी बढ़ गई हैं। यदि मैं उन्हें सच्चाई से नहीं व्यक्त करूंगा तो मैं अपने महान नेता स्वर्गीय महात्मा गांधी के प्रति भी सत्यनिष्ठा नहीं रख सकूंगा।

चूंकि हमें एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है इसलिये मैं हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें किसी प्रकार की आशंकाएं, संदेह अथवा भय नहीं है। मेरे मित्र डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी आज प्रात: बता चुके हैं कि अहिन्दी प्रान्त, जिनमें दक्षिण-भारत भी सम्मिलित है, किन भयों और संदेहों से पीड़ित है। आज प्रात: जब पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र बोल रहे थे तो मेरे हृदय से यह विचार उठा कि अच्छा यही होगा कि संस्कृत को राज्य की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। ताकि उस भाषा पर, जो सभी भाषाओं की जननी है, सभी लोगों का समान अधिकार हो। तब इस सभा में उपस्थित संयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रांत के नेताओं तथा उड़ीसा अथवा मद्रास के नेताओं की सन्तानों के बीच किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं होगी। वे सभी संस्कृत सीखेंगे।

हमें आज जो आशंकायें और भय हैं वे हमें कुछ वर्ष पूर्व भी थे जब पदाधिकारी अंग्रेज ही होते थे और सिविल सर्विस की परीक्षायें लंदन में होती थीं। स्वभावत: अंग्रेज ही अधिकतर पदाधिकारी होते थे। जब चूंकि सिविल सर्विस की तथा अन्य सेवाओं की परीक्षायें दिल्ली में होती हैं इसलिये आगे चलकर (मैं इस समय की नहीं बल्कि पन्द्रह वर्ष बाद की बात कह रहा हूं) संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त जैसे हिन्दीभाषी प्रान्तों के लोगों का देश की सिविल सर्विस तथा अन्य सेवाओं में प्रभुत्व रहेगा।

हिन्दी भाषा में किस कोटि की शिक्षा तथा परीक्षायें होंगी और उनका लक्ष्य क्या होगा? मैं अधिक हिन्दी नहीं जानता। मैं थोड़ी बहुत तथाकथित हिन्दुस्तानी जानता हूं, जिसे साधारण लोग बोलते हैं, अर्थात् वह साधारण हिन्दुस्तानी जिसे पदाधिकारी नौकरों से अथवा साधारण कारिन्दों से बोलते हैं। उतनी हिन्दुस्तानी मैं जानता हूं। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि संसार में हिन्दी भाषा में ही क्रियायें लिंगों के अनुरूप होती हैं।

***एक माननीय सदस्य:** क्या यह जर्मन भाषा में नहीं होता?

***श्री बी. दास:** मैंने जर्मन भाषा सीखने का प्रयास किया था किन्तु मुझे खेद है कि प्रथम युद्ध के छिड़ने पर मुझे वह प्रयास त्यागना पड़ा। किन्तु अब बुढ़ापे में मैं हिन्दी बोलने के लिये तैयार नहीं हूं क्योंकि मुझे हमेशा यह भय रहेगा कि मैं क्रियाओं को ठीक लिंगों के सहित बोल रहा हूं या नहीं। और कहीं हिन्दी भाषी स्त्री और पुरुष मेरी त्रुटियों पर हंस तो नहीं रहे हैं।

किन्तु समस्या यह नहीं है। हमारे बच्चों को जर्मन के समान एक ऐसी भाषा सीखनी होगी जिसके वाक्यों को प्रयोग करते समय उन्हें सावधान रहना होगा कि कहीं वे गलत क्रियाओं को तो नहीं प्रयोग कर रहे हैं। यह एक भय है। किन्तु मैं उसकी उपेक्षा करने के लिए तैयार हूं। परन्तु मैं इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं कि आगे पन्द्रह बीस, अथवा तीस वर्ष तक हिन्दी भाषी लोगों की सन्तानों का ही, चाहे वे संयुक्तप्रान्त के हों अथवा मध्यप्रान्त के, अखिल-भारतीय सेवाओं में प्रभुत्व रहेगा।

मैंने देखा है कि पिछले इक्कीस वर्षों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का देश में कितना प्रसार हुआ है। मैं यह कहूंगा कि हिन्दी वक्ताओं को प्रशिक्षा देने में, मेरे मित्र श्री सत्यनारायण तथा श्रीमती दुर्गाबाई के प्रयत्नों के अतिरिक्त बहुत कम काम किया गया है। आज उड़ीसा अथवा मद्रास में पढ़ने वाले वे लोग जो थोड़ी बहुत हिन्दी जानते हैं, क्या हिन्दी भाषी लोगों के साथ प्रतियोगिता में सम्मिलित होने अथवा मेरे मित्र पंडित बालकृष्ण शर्मा के समान संगीत और काव्य की रचना करने, अथवा मेरी मित्र श्रीमती कमला चौधरी के समान सुन्दर कहानियां लिखने की आशा कर सकते हैं? सम्भव है मेरी पीढ़ी पर इसका कोई असर न पड़े किन्तु आने वाली सीढ़ियों पर इसका अवश्य असर पड़ेगा।

हमें यह विदित है कि हमको एक राष्ट्र-भाषा स्वीकार करनी होगी। हम हिन्दी को स्वीकार करते हैं। संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त के नेता इतने असहिष्णु क्यों हैं? मैंने यह देखा कि उस तरफ की जगहों से एक के बाद दूसरा नेता आया और वे सब हिन्दी में ही बोले, यद्यपि वे यह जानते थे कि वे संयुक्तप्रान्त के, अथवा मध्यप्रान्त के, अथवा बिहार के सदस्यों से अपील नहीं कर रहे हैं। वे दक्षिण भारत के लोगों, अथवा उड़ीसा के मुझ जैसे लोगों और बंगाल के लोगों से, जो थोड़ी सी ही हिन्दी जानते हैं, अपील कर रहे हैं। यह सभी जानते हैं कि बंगाली थोड़े बहुत कट्टरपंथी होते है। वे किसी भी भारतीय भाषा को अच्छी प्रकार नही सीख पाते यद्यपि वे अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। श्रीमान्, मुझे आशा है कि अब संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बिहार के जो सदस्य बोलेंगे तो वे अंग्रेजी में बोलेंगे ताकि दक्षिण-भारत के सदस्य और मुझ जैसे सदस्य जो बहुत कम हिन्दी जानते हैं उन्हें समझ सकें। यदि उन्हें अपनी मातृ-भाषा से इतना अधिक प्रेम है तो वे उसकी सेवा किसी अन्य अवसर पर करें। उनके तर्कों से इसका परिचय मिलना चाहिये कि वे सहिष्णु हैं और वे कुछ प्रदान करना चाहते हैं और वह यह कह कर अपनी उदण्ड मनोवृत्ति का परिचय न दें कि "आप हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें। हमें इसकी चिंता नहीं है कि आपका तथा आपके पुत्रों और पौत्रों का क्या होगा।"

हम नहीं चाहते कि संयुक्तप्रान्त के अथवा मध्यप्रान्त के सदस्य इस प्रकार का रुख दिखायें। इस प्रकार आप न तो भविष्य में, और न अब, हमारा सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। श्रीमान्, मैं इसके विचार से ही उत्तेजित हो उठता हूं और यदि मैं अपने हृदय की बात कह रहा हूं तो अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से ही कह रहा हूं।

श्री एच.जे. खांडेकर (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं माननीय सदस्य महोदय को बताना चाहता हूं कि मध्यप्रान्त में केवल हिन्दी ही नहीं बोली जाती है। वहां मराठी और हिन्दी बोली जाती है।

श्री बी. दासः अच्छी बात है, श्रीमान्। मुझे अपने मित्र का त्रुटिशोधन मान्य है। मेरे मस्तिष्क में जब्बलपुर का जिला है जिसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति, मेरे मित्र सेठ गोविन्द दास को जन्म दिया है।

श्रीमान्, मैं यह बता चुका हूं कि हम मनुष्य हैं और हम रोटियों के टुकड़ों की समस्याओं से उतने ही प्रभावित होते हैं जितने उच्च राष्ट्रीय आदर्शों से। अब आगे संयुक्तप्रान्त के जो नेता बोलें वे इस समस्या का कोई ऐसा हल बतायें कि जिससे अन्य प्रान्त जैसे उड़ीसा, आसाम, बंगाल अथवा मद्रास, बंबई का एक भाग, मैसूर और त्रावणकोर के समान दक्षिण राज्य, उनके प्रान्त से पिछड़ न जायें। उन्हें इस प्रश्न को हल करना होगा।

उन्हें हमें यह बताना होगा कि वे इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत के तीस करोड़ लोगों को किस प्रकार हिन्दी सिखायेंगे। हमें यह किसी ने नहीं बताया है। केवल प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बना देने से प्रश्न हल नहीं हो जाता। आखिर पिछले 21 वर्षों में संयुक्तप्रान्त ने अन्य प्रान्तों को कितने अध्यापक भेजे? उसने सौ से अधिक अध्यापक, नहीं भेजे हैं। क्या वे यह आशा करते हैं कि संयुक्तप्रान्त के गांवों के स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों में से प्रत्येक अध्यापक उड़ीसा, बंगाल, आसाम और मद्रास जायेगा और हमारे लड़कों को तथा लड़कियों को इतनी हिन्दी सिखा देगा कि वे प्रतियोगिता में संयुक्तप्रान्त के तथा उत्तर मध्यप्रान्त के लड़कों तथा लड़कियों के साथ भाग ले सकेंगे? यदि संयुक्तप्रान्त के मेरे मित्र सहिष्णु होते तो वे पिछले तीन चार सप्ताह से जिस प्रकार हमारा दिल दुखा रहे हैं उस प्रकार न दुखाते।

अंकों के प्रश्न को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि सारे भारत ने सहयोग की भावना दिखाकर हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। वे आखिर मानते क्यों नहीं हैं? संसार गतिशून्य नहीं है। हम इस संविधान में इस समय जो कुछ रख रहे हैं वह पांच या दस वर्ष पश्चात् निष्क्रमण हो सकता है। हम, हिन्दू जानते हैं कि संसार में कैसे परिवर्तन हो रहे हैं। हम जानते हैं कि ईश्वर की कल्पना में भी अतीत काल से कितने परिवर्तन हुये हैं। ऋग्वेद के काल से लेकर उपनिषदों, पुराणों और भागवत के काल तक तथा फिर आधुनिक काल तक यह कल्पना बदलती रही है। मेरे संयुक्त-प्रान्त के मित्र इस पर इतना अधिक जोर क्यों दे रहे हैं कि देवनागरी के अंक ही काम में लाये जायें और अन्तर्राष्ट्रीय रूप में जो भारतीय अंक हैं उन्हें काम

[श्री बी. दास]

में न लाया जाये। यद्यपि हममें से बहुत से लोग उन्हीं को काम में लाना चाहते हैं? मैंने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है कि इन अंकों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय अंक भी काम में लाये जायें। हो सकता है कि हम अकारण भय कर रहे हों। अब से दस या बीस वर्ष पश्चात् यह प्रमाणित हो सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करके हमने गलत कदम उठाया। किन्तु इस समय हमें कोई भय नहीं है और इसलिये सभा को दोनों अंक स्वीकार कर लेने चाहियें।

हम अंकों के जैसे छोटे प्रश्न पर लड़ना नहीं चाहते। संयुक्तप्रान्त तथा उत्तर मध्यप्रान्त के मेरे मित्र इसके लिये क्यों नहीं सहमत होते कि पन्द्रह वर्ष तक दोनों प्रकार के अंक काम में लाये जायेंगे? तब हममें से कई लोग यहां नहीं रहेंगे। पन्द्रह वर्ष पश्चात् कम से कम मैं इस संसार में नहीं रहूंगा। इस काल के पश्चात् जो लोग स्वतंत्र भारत के इस संविधान को पन्द्रह वर्ष तक व्यवहार में लाने के पश्चात् स्वतंत्रता की नवीन लहर से प्रभावित होकर आयें वे एक जगह बैठ कर इस प्रश्न को हल करें कि देवनागरी अंकों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय अंक रहें या नहीं।

डॉ. मुकर्जी ने आज प्रातः ठीक ही कहा कि चूंकि विज्ञान प्रगति कर रहा है और अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग दिखाई देने लगा है, और बाह्य जगत से सम्पर्क बढ़ने लगा है, तथा एक विश्व की भावना भी प्रबल होने लगी है, इसलिये कम से कम विज्ञान तथा कला-कौशल के क्षेत्रों में हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को रखें। यह मेरे निर्णय करने की बात नहीं है कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। मैं केवल एक ऐसे सूत्र को निश्चित करने के लिये प्रयत्न कर सकता हूं जो सभी को मान्य हो ताकि तत्संबंधी अनुच्छेद संविधान में समाविष्ट किये जा सकें। किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। दक्षिण भारत के सदस्यों को उत्तर भारत के सदस्यों के विचार-विमर्श से रुष्ट न होना चाहिये। साथ ही जब दक्षिण भारत यह चाहता है कि प्राचीन काल के अंकों को प्रशासन में स्थान दिया जाये तो उत्तर भारत को उस पर दबाव नहीं डालना चाहिये। यदि हममें से कुछ लोग उस व्यक्ति की स्मृति के प्रति आदर-भाव रखते हैं जिसने हमें स्वतंत्रता प्रदान की और कारागार के कष्ट सहन किये और उस स्मृति के कारण यदि हम सहयोग करते हैं और किसी का दिल दुखाना नहीं चाहते तो साथ ही संयुक्तप्रान्त के नेताओं से, जो भाषा और अंकों के प्रश्न पर जोर दे रहे हैं, आशा रखते हैं कि वे सहिष्णुता की भावना का परिचय देंगे।

***डॉ. पी. सुब्बारायन** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस आदरणीय सभा के समक्ष प्रथम बार बोल रहा हूं और इस विचार को अपने मस्तिष्क से दूर नहीं कर पा रहा हूं। मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है और वास्तव में और सभी संशोधन उसके अनुगामी हैं।

मेरे संशोधन का आशय यह है कि संघ की भाषा रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी हो। मेरे विचार से हमें संसार के साथ निकट संबंध स्थापित करना चाहिये। संसार

के विभिन्न प्रदेश अब एक दूसरे के निकट आते जा रहे हैं। हमें अब केवल अपने प्रान्तों ही की बात न सोचनी चाहिये। हमें अधिकतर "एक विश्व" के बारे में ही सोचना चाहिये। यदि वास्तव में आपका "एक विश्व" और शान्ति के विचारों में विश्वास है, जिनका महात्मा गांधी ने संसार में प्रचार किया तो मुझे विश्वास है कि आप में से अधिकांश लोग, यदि आप अपने दिलों को टटोलेंगे तो मेरे प्रस्ताव के पक्ष में मत देने के लिए तैयार हो जायेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): महात्मा गांधी ने कभी यह नहीं कहा कि हिन्दुस्तानी रोमन लिपि में लिखी जाये।

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** मैंने रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी का प्रस्ताव इसलिये रखा है कि इस प्रश्न का यह एक ऐसा हल है जिसे स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि दो लिपियों के कारण बहुत कठिनाई हो सकती है।

मैं एक अन्य विषय के संबंध में भी बोलना चाहता हूं। अंग्रेजी के संबंध में आखिर नाक-भौं क्यों सिकोड़ी जा रही हैं? अंग्रेजी से आखिर इतनी नफरत क्यों होने लगी है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात् मैं यह समझता था कि हमने नफरत का पूर्णतया परित्याग कर दिया है और अब हम अंग्रेजों के मित्र हो गये हैं। मैं अमरीका का उदाहरण देना चाहता हूं। आज यदि आप अमरीका की जनसंख्या के आंकड़े देखें तो आपको विदित होगा कि वहां केवल बीस प्रतिशत लोग ही अंग्रेज हैं। जहां तक मैंने देखा है, खेलों में भी वहां के जो लोग आते हैं वे कई जातियों के होते हैं। और किसी प्रकार भी ऐंग्लो सैक्सन नहीं कहे जा सकते। डेविस कप के लिये आस्ट्रेलिया के विरुद्ध उन्होंने हाल में जो मैच खेली थी उसमें अमरीका की ओर से स्क्रोएडर तथा गोंजेल्स ने बहुत अच्छा खेला और मैच जीती। क्या स्क्रोएडर और गोंजेल्स से भी अजीब नाम आपने सुने हैं? उनमें से एक जर्मन है और दूसरा पुर्तगाली।

अमरीका में बसने वाले विभिन्न राष्ट्रों के इन लोगों ने एकमत होकर अंग्रेजी को अपनी भाषा माना है। मुझे यह कहने का साहस नहीं है कि हम अंग्रेजी भाषा को लोक-भाषा के रूप में अपनायें यद्यपि लगभग डेढ़ शताब्दी तक वह हमारे देश में प्रचलित रही है और अंग्रेजी भाषा से हमने भी वे सब बातें सीखी हैं जो अन्य देशों ने सीखी हैं।

दुर्भाग्य से हमारी वह स्थिति नहीं है। चाहे कितनी ही बातें क्यों न कहीं गई हों किन्तु अब भी नफरत की भावना तथा आक्रांता की भाषा से दूर रहने की भावना है, यद्यपि आक्रांता बिना एक गोली चलाये हुए अपनी खुशी से इस देश से चला गया है और वह इस कारण कि वह समझ गया कि अब वह समय आ गया है जब उसे राष्ट्र के निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिये। किन्तु फिर भी मैं राष्ट्र की भावना का आदर करने के लिये तैयार हूं।

किन्तु मैं यह चाहता हूं कि माननीय सदस्य महात्मा गांधी का स्मरण करें। मुझसे यह कहा गया है कि इस भाषा संबंधी विवाद में हम महात्मा गांधी का नाम न लें। मैं पूछता हूं कि आखिर क्यों नहीं? क्या इस कारण कि प्रतिदिन

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

माननीय सदस्य उनके पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं और जो कुछ उन्होंने हमें सिखाया है उसके विपरीत कार्य करते हैं। इस दशा में, अध्यक्ष महोदय, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के संबंध में आखिर मैं उनका नाम क्यों न लूं?

***श्री आर.के. सिधवा:** ठीक है। वे जो कुछ कहते थे वही कहना चाहिये। वे रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी की बात कभी नहीं कहते थे।

डॉ. पी. सुब्बारायन: श्री सिधवा यदि आप कुछ धैर्य रखें और मुझे अपना तर्क पूर्ण रूप से उपस्थित करने दें तो आप समझ जायेंगे कि मैं क्या कहा रहा हूं। मैंने रोमन लिपि के संबंध में उनकी चर्चा नहीं की। केवल हिन्दुस्तानी के संबंध में ही मैंने उनकी चर्चा की। श्रीमान्, मेरा यह तर्क है कि चूंकि अंग्रेजी का प्रश्न ही नहीं रह जाता इसलिये अच्छा यही है कि हम रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी को स्वीकार करें क्यों कि उस लिपि के कारण हमारा संसार से संबंध बना रहेगा।

मैं यह कहता हूं कि अंकों के संबंध में ये सब अनर्गल बातें क्यों कही जा रही हैं। क्या आप बिल्कुल पुरातन होने जा रहे हैं और ऐसी बातें अपनाने जा रहे हैं जो बहुत पहले भुला दी गई हैं और जिन्हें आप अब पुनर्जीवित करना चाहते हैं क्योंकि आप यह समझते हैं कि वे आपकी अपनी हैं? श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि ये अंक उन अंकों से बहुत प्राचीन हैं जिन्हें आप छाती से लगा रहे हैं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** पूछिये।

***डॉ. पी. सुब्बारायन:** इस संबंध में कुछ पूछने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह एक तथ्य है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** यह तथ्य नहीं है।

***डॉ. पी. सुब्बारायन:** आप जो चाहें कहें किन्तु इस संबंध में मेरा अपना मत है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** आपका मत ही सब कुछ नहीं है।

***डॉ. पी. सुब्बारायन:** यह मेरा मत नहीं है। यह एक तथ्य है, केवल मत ही नहीं है। आपका अपना मत है जिसके आधार पर आप तथ्य को ही बदल देना चाहते हैं। श्रीमान्, जहां तक अंकों का प्रश्न है उसके संबंध में मैं तथ्यों को प्रमाणित करने के लिये श्री शर्मा के लाभार्थ इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका से एक उद्धरण देता हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** कहिये आपके सूचनार्थ।

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** मुझे पर्याप्त सूचना प्राप्त है। "हमारे वर्तमान अंकों के बारे में, जो साधारणतया अरबी अथवा हिन्दू-अरबी अंक कहे जाते हैं, विभिन्न प्रकार के दावे किये गये हैं और प्रत्येक में कुछ न कुछ तथ्य है। यह कहा जाता है कि अरबों ने, अथवा ईरानियों ने, अथवा मिश्र निवासियों ने, अथवा हिन्दुओं ने इन अंकों को लिखना आरम्भ किया। व्यापारियों के बीच समागम होने के कारण ये चिह्न विभिन्न देशों में ले जाये गये। इसलिये यह सम्भव है कि हमारे अंक विभिन्न स्रोतों से आये हों। किन्तु जिस देश में इनमें से अधिकांश अंक, प्रयोग में आते थे वह भारत है....."एक चार और छह का अंक ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोक के शिलालेखों में मिलता है। उस समय आपके अंकों के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। दो, चार, छह, सात और नौ का अंक एक शताब्दी बाद के नाना घाट के शिलालेखों में मिलता है।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या नाना घाट यूरोप में है?

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि ये हमारे अंक हैं किन्तु दुर्भाग्य से आप यह स्वीकार नहीं कर रहे हैं। मैं केवल यह सिद्ध कर रहा हूं कि इन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई और किसी अन्य स्थान में नहीं हुई। दो, तीन, चार, पांच, छह, सात और नौ के अंक नासिक की गुफाओं में पहली अथवा दूसरी शताब्दी में लिखे गये थे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या आपने इन अंकों को नासिक की गुफाओं में लिखा देखा है? क्या आप सभा को इस संबंध में सूचना दे सकते हैं कि क्या ये अंक उन्हीं अंकों के समान हैं जो इस समय प्रयोग में हैं?

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** मैं माननीय सदस्य महोदय से तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। उन्हें भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलेगा। इस समय वे कृपया मेरी बातें धैर्यपूर्वक सुनें। दो, तीन, चार, पांच, छह, सात और नौ के अंक नासिक की गुफाओं में पहली अथवा दूसरी शताब्दी में लिखे गये थे। वे बहुत कुछ हमारे अंकों के समान ही हैं। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि हमारे दो और तीन के अंक उन अंकों के दो और तीन अंकों से ही निकले हैं।

इन प्राचीन भारतीय शिलालेखों में अंकों के स्थानों का अथवा शून्य का कोई प्रमाण नहीं है। सम्भव है अंकों के स्थान हमीं ने निश्चित किये हों। हिन्दुओं के साहित्य में इसका थोड़ा बहुत प्रमाण मिलता है कि शून्य को हम से पहले भी लोग जानते थे। किन्तु नवीं शताब्दी के पूर्व का कोई भी ऐसा शिलालेख नहीं मिलता जिसमें यह चिह्न अंकित हो। हिन्दुओं के अंकों का वह्य देशों से सबसे पहला प्रमाण मेसोपोटामिया के एक पादड़ी सवरूस सिवोख्त के सन् 650 ई. के एक लेख में मिलता है। चूंकि वे नौ चिह्नों का उल्लेख करते हैं इसलिये यह प्रतीत होता है कि शून्य के अंक से वे परिचित थे।

***अध्यक्षः** क्या आप उनके निर्णय के आधार पर इस प्रश्न को हल करने जा रहे हैं?

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** उस आधार पर नहीं किन्तु इस आधार पर कि उनकी उत्पत्ति भारत में हुई। मैं केवल यह प्रमाणित कर रहा हूं कि ये हमारे अंक हैं और हमें इनके कारण शर्मिन्दा होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** इस ब्यौरे पर अब अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रश्न को अधिक विस्तृत आधार पर हल करने की आवश्यकता है।

डॉ. पी. सुब्बारायनः श्रीमान्, मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हमें इन अंकों के कारण शर्मिन्दा होने की आवश्यकता नहीं है। वे हमारे ही अंक हैं और हम उन्हीं अंकों को अपना रहे हैं जो हमारे ही थे और जो संसार भर में समझे जाते हैं। इस प्रकार हम संसार के अन्य देशों से भी निकट संबंध स्थापित कर सकते हैं क्योंकि इस समय संसार के साठ प्रतिशत लोग इन अंकों को काम में लाते हैं। इन्हें अपनाने में कोई हानि नहीं है। इस स्थिति में मेरी समझ में नहीं आता कि हम ऐसे अंकों को क्यों अपनायें जो अप्रचलित हों और उन अंकों को क्यों त्याग दें जिनसे हम सुपरिचित हैं और जिन्हें कई वर्षों से काम में ला रहे हैं।

मैं रोमन लिपि की ओर संकेत कर चुका हूं *(विघ्न)*। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी एक संविधानिक विशेषज्ञ हैं। मैं विशेषज्ञ होने का दावा नहीं करता। मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब संसार के सभी देश इस लिपि से सुपरिचित हैं और वे उत्तरोत्तर एक दूसरे के निकट आ रहे हैं तो इस लिपि को अपनाने से हम उनके निकट रहेंगे और हमारे वैज्ञानिक संसार के वैज्ञानिकों से अपनी ही भाषा में विचार विनिमय कर सकेंगे। संसार के अन्य देशों के निवासी इस लिपि को आसानी से पढ़ सकेंगे और इसलिये हमारा उनके साथ निकट संबंध रहेगा। मुझे आशा है कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को इससे संतोष हो गया होगा।

जहां तक मेरे अन्य संशोधनों का संबंध है उनके विषय में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरी इच्छा यह है कि श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव के अधीन जो आयोग गठित होने वाला है वह पांच वर्ष के बाद गठित न हो। उसके लिये पांच वर्ष का समय बहुत कम है। वह दस वर्ष अथवा इससे अधिक समय बाद गठित किया जाये और इन दस वर्षों में अंग्रेजी भाषा का ही माध्यम बना रहे। संयुक्तप्रान्त के मेरे मित्र इस पर हंस रहे हैं। यदि हिन्दी के विवाद में उनका भी वही अनुभव होता जो मेरा रहा है तो वे समझ जाते कि मैं उनसे यह कदम उठाने के लिये क्यों अपील कर रहा हूं। हम दाक्षणात्यों ने यह स्वीकार किया कि हमारी एक राष्ट्र-भाषा होनी चाहिये और हमें उत्तर भारत के लोगों की ध्वनि में अपनी ध्वनि भी मिलानी चाहिये। इसलिये आप जो कुछ चाहते थे उसका 95 प्रतिशत हम निगलने के लिए तैयार हो गये। किन्तु आप यह चाहते हैं कि

हम शेष पांच प्रतिशत को भी निगल जायें क्योंकि आपका तामिल की इस कहावत में विश्वास है कि "आपके खरगोश की तीन ही टांगें हैं।"

मुझे तामिल की एक अन्य कहावत भी स्मरण हो आती है जो इस प्रकार है—यदि कोई व्यक्ति आकर आपसे बरामदे में थोड़ी सी जगह मांगता है और आप उसे जगह दे देते हैं तो फिर वह यह मांग करेगा कि उसे घर में ही घुसने दिया जाये। आज आप सज्जनों में से अधिकांश यही कर रहे हैं।

श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यह बहुत आवश्यक है कि आप दाक्षणात्यों की स्थिति को समझें। मैं आपको बताऊंगा कि मद्रास में जब मैं शिक्षा मंत्री था तो मेरे कार्यकाल के पहले तीन महीनों में जब हाई स्कूलों की पहली तीन कक्षाओं में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में जारी की गई तो क्या हुआ, ताकि आप यह समझ सकें कि मैं इसके लिये इतना चिंतित क्यों हूं कि मैं यहां से कुछ करा कर जाऊं। तीन महीने तक जब कभी मैं घर से निकलता था तो मुझे इन नारों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई देता था, "हिन्दी मुर्दाबाद, तामिल जिन्दाबाद। सुब्बारायन मुर्दाबाद, राजगोपालाचारी मुर्दाबाद।" तीन मास तक यही नारे लगाये जाते रहे। और तो क्या हमें उस दंड-विधि संशोधन अधिनियम को भी प्रयोग में लाना पड़ा जिसके विरुद्ध हमने स्वयं आवाज उठाई थी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): वाह, वाह।

***डॉ. पी. सुब्बारायन:** श्री कृष्णमाचारी वाह, वाह कहते हैं। मुझे स्मरण है कि इस सभा में उन्होंने कैसी आलोचना की थी। यदि उस समय वे पदारूढ़ होते तो वे और भी दूषित हथियारों से काम लेते।

श्रीमान्, संयुक्तप्रान्त के अपने सहकारियों को मैं एक सूचना और दूंगा। कांग्रेस पत्रिका अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती है। यदि आप इन दो भाषाओं के प्रकाशनों की ग्राहक संख्या को देखें तो आपको आश्चर्य होगा। हिन्दी के ग्राहकों की संख्या अंग्रेजी के ग्राहकों की संख्या की 1/40वां भाग है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी के प्रयासों तथा अन्य प्रयासों के होते हुये भी जो लोग हिन्दी भाषा के समर्थक हैं उन्हें भी हमें कांग्रेस पत्रिका के हिन्दी संस्करण को खरीदने के लिये तैयार नहीं कर सके हैं। कांग्रेस के मंत्री मेरे माननीय मित्र कलावेंकट राव मुझ से कहते हैं कि मैं संख्या बताऊं। उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि मैं किन कारणों से संख्या नहीं बताना चाहता।

मैं चाहता हूं कि सभा एक और संशोधन को भी स्वीकार कर ले। जिसका आशय यह है कि परिशिष्ट में चौदहवीं भाषा अंग्रेजी हो। मेरे विचार से मेरे मित्र श्री एंथनी यह अच्छी प्रकार बता चुके हैं कि उसे किन कारणों से रखना चाहिये। और उन्होंने जो कारण बताये हैं वे ठीक हैं। आंग्ल भारतीय समुदाय की जनसंख्या हमारी जनसंख्या की तुलना में नगण्य भले ही हो किन्तु उस समुदाय के लोग वैसे ही भारतीय हैं जैसे अन्य लोग। यदि हम उन्हें अपना निकट संबंधी समझते

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

हैं तो हमें अन्य भाषाओं के साथ उनकी भाषा को भी परिशिष्ट में स्थान देना चाहिये। इसलिये मेरी यह धारणा है कि चौदहवीं भाषा अंग्रेजी भाषा होनी चाहिये।

मेरे मित्र श्री लक्ष्मीकान्त मैत्र भी चाहते हैं कि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। मैं यह चाहता हूं कि संस्कृत को पन्द्रहवीं भाषा के रूप में रखा जाये। संस्कृत हमारी प्राचीन भाषा है और हमें अपने संविधान में उसका उल्लेख करना ही चाहिये। हम उसका इस स्थान पर उल्लेख कर सकते हैं।

सभी बातों पर विचार करने के पश्चात् मेरी यह धारणा है कि हमारे लिये यही उचित है कि हम रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी को देश की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. सुब्बारायन ने इस सभा में जो अत्यंत तर्कपूर्ण भाषण दिया है उसके पश्चात् यदि मैं संस्कृत का समर्थन करने के लिये आगे बढ़ूं तो लोग मेरी बातों को पुरानी धुरानी समझेंगे। मेरी अपनी यह धारणा है कि हमें संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिये। संस्कृत सारे भारत में छाई हुई है। चाहे आप कितना ही प्रयास क्यों न करें आप संस्कृत से छुटकारा नहीं पा सकते। वह हमारी संस्थाओं में व्याप्त है और हमारे जीवन में उसी के दर्शन का संचार है। हमें जो कुछ भी सुन्दर अथवा मूल्यवान वस्तु उपलब्ध है और जिन आदर्शों को हम बहुमूल्य समझते हैं, तथा जिनके लिये संघर्ष करते हैं वे सब हमें संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त हुये हैं। आखिर हम श्री कृष्ण, बुद्ध तथा राष्ट्रपिता जैसे महान पुरुषों का अनुसरण क्यों करते हैं? यदि हमें संस्कृत की परम्परा प्राप्त नहीं होती तो हम उनका अनुसरण नहीं करते। सबसे सुन्दर साहित्य, सबसे गहन दर्शन तथा सबसे कठिन विज्ञान संस्कृत भाषा ही में उपलब्ध है। क्या कालीदास की शकुन्तला अथवा मेघदूत से अधिक सुन्दर और भी कुछ हो सकता है? संस्कृत भाषा में जिन वस्तुओं का वर्णन है उनसे भी अच्छी वस्तुएं क्या संसार में कोई और हो सकती हैं अथवा जिस संस्कृति का वर्णन उस भाषा में है क्या उससे भी अच्छी संस्कृति और कोई हो सकती है? जहां तक दर्शन का संबंध है हमें तर्कपूर्ण सांख्यदर्शन प्राप्त है, जिसका स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में प्रचार किया था, जिसका परिणाम यह हुआ था कि वहां के लोग यह समझने लगे कि हमारा धर्म सर्वोत्कृष्ट धर्मों में से एक है। यह सब करने में वे इस कारण समर्थ हुये कि उन्हें संस्कृत का गहन ज्ञान प्राप्त था। अपनी अलौकिक शक्ति के कारण ही वे संसार में अपने विचारों का प्रसार कर सके।

मैं अपनी भावनाओं तथा अपने विचारों को उस प्रकार व्यक्त करने में समर्थ नहीं हूं जैसे मेरे मित्र पंडित लक्ष्मी कांत मैत्र ने व्यक्त किये हैं। मेरा संस्कृत का ज्ञान उतना विस्तृत नहीं है जितना उनका है अन्यथा मैं आपको बताता कि संस्कृत में विज्ञान, संगीत, गृह-निर्माण विद्या, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और शल्य चिकित्सा का भी ऐसा साहित्य है कि उस पर आश्चर्य होता है। हम उससे कई चीजें ले सकते हैं। संस्कृत का ऐसा शब्द-भंडार है कि प्रान्तीय भाषा-भाषियों को किसी शब्द की आवश्यकता होती है तो वे उसे संस्कृत ही से लेते हैं। अच्छी

हिन्दी भी संस्कृत ही है। श्रीमान्, जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त हमारे सभी संस्कार मंत्रों के द्वारा ही होते हैं। हमारे जीवन पर संस्कृत का इतना प्रभाव है कि हम उससे छुटकारा नहीं पा सकते। हो सकता है कि आज कुछ ही लोग संस्कृत समझते हैं किन्तु अंग्रेजी का भी आखिर क्या हाल है? केवल एक प्रतिशत अथवा दो प्रतिशत लोग अंग्रेजी बोलते हैं।

जहां तक माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का संबंध है, मैं उसे स्वीकार करता हूं क्योंकि उसमें मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। वह भारत के लिये हितकर सिद्ध होता और वह इस कारण नहीं कि हिन्दी अन्य भाषाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट भाषा है। वास्तव में जब मैंने मौलाना साहब जैसे लोगों को हिन्दुस्तानी बोलते हुये सुना तो मैं उस भाषा की गम्भीरता, सुन्दर शैली, लचीलेपन तथा माधुर्य से प्रभावित हुआ और मैंने यह विचार किया कि हिन्दी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी ही अच्छी है। आप मुझसे इसका कारण न पूछियेगा क्योंकि मैं आपको नहीं बता सकूंगा। मैं उस भाषा को पढ़ना अथवा लिखना नहीं जानता। किन्तु हिन्दुस्तानी भाषा की गम्भीरता कुछ ऐसी है कि जब मैंने उस भाषा को सुना तो मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ। मैंने कई वक्ताओं को हिन्दी में तथा हिन्दुस्तानी में बोलते हुये सुना है। मैं हिन्दुस्तानी भाषा की गम्भीरता, उसकी सुन्दर अभिव्यंजना तथा उसके लचीलेपन से प्रभावित हुआ और मैंने यह विचार किया कि वह बहुत चित्ताकर्षक भाषा है।

संस्कृत के प्रश्न को फिर उठाते हुये मैं निवेदन करना चाहता हूं कि वह हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं की जननी है। हम संस्कृत भाषा को अपने से उत्कृष्ट भारतवासी हो सकेंगे क्योंकि संस्कृत सारे भारत में व्याप्त है। यदि हम हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को भी अपनायें, तब भी हम संस्कृत से छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि उसी भाषा में हमारा दर्शन तथा संसार के सभी सुन्दर पदार्थ वर्णित हैं।

जहां तक अंकों का संबंध है यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को अपना लेंगे तो आसमान नहीं गिर जायेगा। जब हम उन्हें डेढ सौ वर्ष तक प्रयोग में लाते रहे हैं तो हम उन्हें अब भी काम में ला सकते हैं। इससे हमारी कोई हानि नहीं होगी। अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को नहीं अपनाने के संबंध में जो कोई तर्क उपस्थित किये गये हैं वह मेरी समझ में नहीं आया क्योंकि आखिर है तो वे हमारे ही अंक। यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को नहीं अपनायेंगे तो हम संसार की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप अपना रहन-सहन नहीं रख सकेंगे। हमें चाहिये कि हम अपने दृष्टिकोण को कुछ अधिक आधुनिक तथा प्रगतिशील बनायें। इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं।

***रेवरेंड जिरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा का कुछ समय लेना चाहता हूं यद्यपि मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं जिन बातों को आपके सामने रखना चाहता हूं उन्हें विभिन्न प्रतिष्ठित वक्ता कह चुके हैं। इस पर भी यदि मैं सभा के कुछ मिनट लेना चाहता हूं तो वह केवल इस

[रेवरेंड जिरोम डीसूजा]

कारण कि इस सभा के कई सदस्यों के समान मेरी भी यही धारणा है कि हम इस समय जिस विषय पर विचार कर रहे हैं वह अत्यन्त गंभीर तथा महत्वपूर्ण है।

श्रीमान्, पिछले दो वर्षों में कई बार हमारे सामने विवादग्रस्त प्रश्न आये हैं और उनके संबंध में उत्तेजना भी उत्पन्न हुई है। ऐसे अवसरों पर हममें से वे लोग, जो हमारे वीर योद्धाओं के समान राजनैतिक संघर्ष में जूझते नहीं रहे हैं किन्तु बहुत कुछ निर्लिप्त होकर उसे देख रहे हैं, यह विचार करते थे कि क्या बहस समाप्त होने के पूर्व कोई ऐसा भी समय आयेगा जब हमारी परम्परागत समझौते की भावना प्रभावी होगी और हम एक ऐसा हल निकाल सकेंगे जो सभी को मान्य होगा। वह समझौते की भावना अवश्य प्रभावी हुई और हम एक ऐसा हल निकाल सके जो सभी को मान्य हुआ, जिसे देखकर बहस में दिलचस्पी रखने वालों को तथा इस देश के मित्रों को अत्यंत संतोष हुआ और इस देश से प्रेम न रखने वालों को—क्योंकि मैं उन्हें शत्रु नहीं कहता हूं—अत्यन्त क्रोध हुआ।

हममें से जो लोग यह चाहते थे कि यह प्रश्न भी उसी समझौते की भावना से हल हो, यह देखकर खेद हुआ कि इस प्रश्न के संबंध में कटुता अथवा उत्तेजना उत्पन्न हो गई है, यद्यपि पहले अन्य किसी प्रश्न के संबंध में ऐसा नहीं हुआ था। मैं यह आलोचना की दृष्टि से नहीं कह रहा हूं क्योंकि ऐसा होना अवश्यम्भावी ही था। इसका कारण यह है कि धार्मिक विश्वास के अतिरिक्त मनुष्य के कार्यों में कोई भी ऐसी बात नहीं है जो मनुष्य के जीवन से तथा उसके कार्य-स्रोत से इतना निकट संबंध रखती है जितना कि भाषा, और वास्तव में तो कुछ दशाओं में तो वह मनुष्य जीवन को तथा उसके कार्यों को धार्मिक भावना से भी अधिक प्रभावित करती है।

आखिर यदि हम इस प्रश्न पर विचार करें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि भाषा और वाणी की दैवी शक्ति के अतिरिक्त मनुष्य के पास और कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके कारण वह सृष्टि में अन्य पदार्थों तथा प्राणियों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ कह सके। जब कोई शब्द सुन्दर हो और सच्चाई के साथ बोला गया हो तो उसमें वक्ता की आत्मा तथा उसका अन्तःकरण प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये मनुष्य जीवन की तथा मनुष्य हृदय की, सुन्दर शब्दों से अधिक सुन्दर और कोई देन नहीं है। साथ ही झूठे हृदय से निकले हुये कठोर शब्दों से अधिक घृणित भी कोई चीज नहीं है। जब शब्द अन्तरतम आत्मा से निकलते हैं और उसकी सच्चाई प्रकट करते है तो उनको प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने साथियों पर ऐसा प्रभाव रखता है जो संसार में अद्वितीय होता है।

आखिर महात्मा गांधी जैसा अद्वितीय पुरुष सबके हृदय का सम्राट किस प्रकार हुआ? वह अपनी सच्ची, शुद्ध, प्रकम्पित अद्वितीय वाणी के प्रभाव से ही इस पद को प्राप्त हुआ। जब कभी हम यह देखते हैं कि हमें किसी ऐसी भाषा को नहीं प्रयोग करने दिया जा रहा है जिसे हम समझते हैं कि यह हमारी अपनी भाषा है और इसके द्वारा हम अपनी भावनाओं को सच्चाई से व्यक्त कर सकते हैं तो हम बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। यही कारण है कि वे लोग उत्तेजित हैं जो एक विशेष प्रकार की हिन्दी चाहते हैं। यह ही कारण है कि वे लोग उत्तेजित

हैं जो मेरे समान चाहते हैं कि भारतीय संस्कृति की सभी धाराओं का, चाहे वह मुस्लिम भारत की धारा को, अथवा ईसाई भारत की धारा हो, अथवा चाहे वे भारत के विभिन्न भागों की धारायें हों, उस भाषा में संगम हो और वह भाषा राज-भाषा के रूप में और अन्ततोगत्वा भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार की जाये।

श्रीमान्, मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के लिये जो महत्व भौतिक जलवायु का है वही महत्व उसके मानसिक स्वास्थ्य के लिये भाषा की आत्मा तथा शब्दावली का है। शब्द रूपी जलवायु में ही लोगों की आत्मा तथा संस्कृति सजीव रहती है। यदि किसी वर्ग को यह बौद्धिक जलवायु स्वीकार्य न हो, यदि हमारे बहुरूपी तथा असाधारण राष्ट्र के विभिन्न वर्गों को एक विस्तृत शब्दावली के अर्थ ध्वनि, विचारों तथा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा से संतोष नहीं होता है, क्योंकि उस शब्दावली में विभिन्न संस्कृतियों की अभिव्यंजना होनी चाहिये, तो इस कारण बहुत ही अशांति फैल जायेगी। मेरा निवेदन है कि यदि हमें राष्ट्र-भाषा के विभिन्न शब्दों, उसकी ध्वनि, प्राण तथा आत्मा में अभिव्यक्त होने वाले सांस्कृतिक जलवायु से संतोष नहीं होगा तो हमें ऐसा ज्ञात होगा कि यह देश हमारा नहीं है और यदि भौतिक रूप से नहीं तो बौद्धिक रूप से हमारा देश-निकाला गया है और हम यहां विदेशी हैं। हमारा जो तर्क है उसका यही अर्थ है। इसी कारण हम इस पर बहुत जोर देते हैं कि इस भाषा की शब्दावली उदारता से बनाई जाये।

मुझे इसकी प्रसन्नता है कि हमारे मित्रों ने इस तर्क को स्वीकार कर लिया है। इस आधारभूत प्रश्न के संबंध में हिन्दी के समर्थकों ने हमें आश्वासन दिया है कि वे इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और वास्तव में श्री गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्तावों में यह निर्धारित कर दिया गया है कि हिन्दी में हिन्दुस्तानी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रूप तथा उनकी शैली और पदावली सम्मिलित रहेगी। इससे हमें यह आश्वासन मिल जाता है कि आगे चल कर जैसे जैसे यह भाषा विकसित होगी इसके द्वारा इस राष्ट्र के विभिन्न तत्वों को सुन्दर बौद्धिक तथा सांस्कृतिक वातावरण प्राप्त हो सकेगा। मुझे इस संबंध में सच्चे हृदय से संतोष है कि साधारणतया हमने भाषा के संबंध में तथा उसके स्वरूप और आत्मीयता के संबंध में और वह जिस लिपि में लिखी जायेगी उसके संबंध में भी समझौता कर लिया है।

जब हम इतनी दूर पहुंच गये हैं तो क्या एक छोटी बात के लिये हम अपनी एकता की भावना को भंग कर देंगे? क्या हमारे मित्र फिर यही कहेंगे कि हमारे इतिहास में यह घटना भी घटित हो सकती थी, किन्तु घटित नहीं हुई? हमारे कुछ ही वर्षों के आधुनिक इतिहास में पिछले दस अथवा पन्द्रह वर्षों के घटना चक्र में एक अवस्था ऐसी भी आई जब अधिकांश लोगों ने यह कहा कि देश का विभाजन आवश्यक है। किन्तु चूंकि अब कुछ समय बीत गया है इसलिये एक ऐतिहासिक के समान निर्लिप्त होकर यह कहा जा सकता है कि यदि अमुक अमुक समय पर हम कोई दूसरा कदम उठाते, अथवा कोई दल अथवा अमुक अमुक व्यक्ति थोड़ी सी भिन्न कार्यवाही किये होता, तो हमारे इतिहास का घटनाक्रम बिल्कुल भिन्न होता।

[रेवरेंड जिरोम डीसूजा]

किन्तु जब हम घटनाओं के निकट होते हैं, अथवा यों कहिये कि उनमें खोये हुये रहते हैं, तो यह कठिन है कि हम निर्लिप्त तथा दूरस्थ होकर निर्णय करें और इस पर विचार कर सकें कि किसी कार्य का, अथवा कदम का, अथवा निर्णय का, क्या क्या प्रभाव होगा। कोई कार्य साधारण प्रतीत हो सकता है, किन्तु उसके गर्भ में ऐसे तत्व छिपे रह सकते हैं जिनका आगे चलकर विस्फोट हो अथवा जिनका कोई ऐसा विकास हो जिसकी पहले से कल्पना नहीं की जा सकती थी। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यहां इस सभा में, चाहे कोई व्यक्ति किसी वर्ग का क्यों न हो किन्तु वह जो कुछ कहता है, और जिस प्रकार के कार्य करता है और इन बहसों में जिस पक्ष का भी समर्थन करता है, उसका अन्त में क्या प्रभाव होगा हम नहीं कह सकते। यह समय ही बता सकता है।

यद्यपि मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इस प्रश्न की आधारभूत बातों के संबंध में समझौता हो गया है किन्तु जो बातें रह गई हैं उनके संबंध में मैं प्रार्थना करता हूं कि कदम उठाने में तथा निर्णय करने में ईश्वर हमारा पथ-प्रदर्शन करे जिससे हम इस प्रश्न को इस प्रकार हल करें कि बहुत मूल्य चुका कर तथा अनेक बलिदान करके हमने जो एकता प्राप्त की है वह अखण्ड बनी रहे। इसलिये मेरी यह आशा है, और मैं यह प्रार्थना करता हूं, कि जिन साधारण बातों के संबंध में हमारा अब भी मतभेद है, उससे भाषा-संबंधी भावनाएं उमड़ कर हमारी एकता खंडित न हो। मैं इसे कट्टरपंथी नहीं कहता क्योंकि अज्ञान से ही, न कि कट्टर-पंथी से, अर्थात् जो निर्णय हम करने जा रहे हैं उसका क्या प्रभाव होगा इसका ध्यान न होने के कारण ही ये भावनायें उमड़ती हैं और उत्तेजना फैलती है।

किन्तु मैं इसके लिए अनुरोध करता हूं कि श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उसे स्वीकार कर लिया जाये, और वह इस कारण नहीं कि उसमें सभी कुछ स्वीकार करने योग्य है, बल्कि इसलिये कि उसमें वे सभी बातें सन्निहित हैं जिनके बारे में समझौता हो सकता है। मैं डॉ. सुब्बारायन के इस कथन से सहमत हूं कि यद्यपि यह कहा गया है और इसके संबंध में समझौता भी हो गया है कि पांच वर्ष के अनन्तर इस प्रश्न को फिर उठाया जायेगा किन्तु यह संतोषजनक व्यवस्था नहीं है। जिस आयोग की कल्पना की गई है उसे हम पांच वर्ष के अनन्तर यह नहीं समझा सकेंगे कि अब महत्वपूर्ण परिवर्तनों का समय आ गया है। मुझे आशा है कि इस संबंध में भी कोई ऐसा संतोषजनक सूत्र रखा जा सकेगा जो सभी को मान्य होगा।

घटना चक्र से सभी को विश्वास हो जायेगा कि कई वर्गों के लोग इस काल में इस भाषा पर इतना अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते जितना अधिकार राज-भाषा पर आवश्यक है विशेषतया जब इस भाषा को न केवल राज-भाषा बल्कि राष्ट्र-भाषा भी होना है। जिन लोगों का यह विचार है कि हम बहुत ढीली-ढाली तौर पर हिन्दी का समर्थन कर रहें हैं, उन्हें मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम हिन्दी को न केवल राज-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं बल्कि यह भी

चाहते हैं कि उसका विकास हो और वह हमारी सभी देशवासियों की दिल की रानी होकर राज-भाषा के पद से राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो। यही नहीं, बल्कि जैसाकि आज प्रातः श्री घुलेकर कह चुके हैं, हम सच्चे हृदय से यह भी चाहते हैं कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी हो जाये। हमारी यह इच्छा है। किन्तु यदि उसे एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होना है तो उसकी अन्तर्राष्ट्रीय आत्मीयता को सुरक्षित रखना चाहिये। यदि हम शब्दों का, विचारों का, विचारधाराओं का तथा पदावलियों का बहिष्कार करते हैं और उनके ऐतिहासिक संबंधों की उपेक्षा करते हैं तो हमारी भाषा में वह अन्तर्राष्ट्रीय आत्मीयता नहीं रह जायेगी जो उसका प्रसार हमारे देश के बाहर अन्यत्र करेगी और उसे विदेशियों की एक प्रिय भाषा बना देगी।

शिष्ट लोग अपनी पसंद से विदेशी भाषाओं को चुनते हैं और उन्हें सीखते हैं। फ्रांसीसियों को अपनी भाषा पर गर्व हैं। फ्रेंच भाषा में एक बहुत सुन्दर कथन है जिसका आशय यह है कि सभी लोग दो भाषायें बोलते हैं—एक अपनी भाषा और दूसरी माधुर्यपूर्ण फ्रेंच भाषा। मैं कह नहीं सकता कि यह वाक्य राष्ट्रीय प्रेम के वश होकर कहा गया है अथवा नहीं किन्तु इससे यह अवश्य प्रकट होता है कि उन्हें अपनी भाषा पर गर्व है—एक दिन वह भी आ सकता है जब सारा सभ्य संसार यह कहने लगे कि सभी लोग दो भाषायें बोलते हैं—एक अपनी भाषा और दूसरी माधुर्यपूर्ण भारतीय भाषा। यदि हमें अपनी भाषा को इस पद पर प्रतिष्ठित करना है तो उसमें लोगों के हृदयों को मोहने तथा उन पर अधिकार करने की शक्ति होनी चाहिये। हमारे देश के कई भागों में जिस प्रकार हमारी भाषा कई युगों, संस्कृतियों, जातियों तथा शासन-कालों की परम्परा को लेकर विकसित हुई है उसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीयता की छाप हमारी राष्ट्र-भाषा में होनी चाहिये।

इस सार्वभौमत्व की भावना को ध्यान में रखते हुये मैं अपने उन मित्रों से, जो अंकों के प्रश्न को लेकर अब भी अड़े हुये हैं, अनुरोध करता हूं कि समझौते से जो सूत्र तैयार किया गया है, उसे वे स्वीकार कर लें और प्रश्न के गुण दोषों पर विचार न करें। मेरा अपना यह विश्वास है कि यदि हम गुण दोषों पर भी विचार करें तो अन्तर्राष्ट्रीय अंक अन्य अंकों से बहुत अच्छे हैं। एक अध्यापक होने के नाते, और विज्ञान तथा साहित्य का एक विद्यार्थी होने के नाते, जिसे इस पर गर्व है कि संसार की संस्कृति को हमने शून्य की कल्पना तथा तत्सम्बद्ध अंकों को प्रदान किया है, मैं यह कह सकता हूं कि गुण दोषों की दृष्टि से भी उचित यही है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करें। यदि इस दृष्टि से उन्हें स्वीकार न भी किया जा सकता तब भी मैं यह कहता कि ये अंक अब हममें से बहुत से लोगों के लिये प्रतीक के समान हो गये हैं। ये हमारे देश के विभिन्न तत्वों के समायोजन के प्रतीक हैं और साथ ही सार्वभौमत्व की भावना के भी प्रतीक हैं। इसलिये हम यह चाहते हैं कि ये हमें प्रदान किये जायें। वास्तव में यह किसी प्रकार की रियायत नहीं होगी। किन्तु एक प्रकार का समझौता होगा और उन लोगों की ओर से सार्वभौमत्व की भावना की पुष्टि होगी, जिन्होंने अभी तक इसका प्रमाण नहीं दिया है कि वे उसे स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इस भारतीय भाषा को न केवल हमारे पैंतीस करोड़ भाई बहिनों को सीखना है किन्तु उन अनेक विदेशियों को भी सीखना है

[रेवरेंड जिरोम डीसूजा]

जो हमारी संस्कृति का अध्ययन करने, हमारे वाणिज्य में भाग लेने तथा वैदेशिक राजनयिक प्रतिनिधत्व के संबंध में इस देश में आते हैं। यह बात नहीं है कि केवल भारतीयों को ही इस भाषा को इस कारण सीखना है कि इसकी ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, विदेशियों को भी इस विदेशी भाषा को सीखना है। हम पन्द्रह वर्ष की मांग इस कारण भी करते हैं कि भारत के वाणिज्यिक हित इस प्रश्न से सम्बद्ध है। जिन बाहर के देशों को इस भारतीय भाषा के ज्ञान की अपेक्षा है उन्हें इसके अध्ययन के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त भारत के हितों की दृष्टि से ही नहीं बल्कि संसार के कल्याण की दृष्टि से भी इस सार्वभौमत्व की भावना की आवश्यकता है।

हम संसार को भारत का संदेश, उसके अध्यात्म, प्रेम तथा अहिंसा का सन्देश सुनाना चाहते हैं, जिसका प्रचार महात्मा गांधी करते रहे। हम अन्य लोगों को बताना चाहते हैं कि हमें अतीत से साहित्य तथा कला के कौन से भंडार प्राप्त हुये हैं। जब तक हम अपने द्वार खुले न रखेंगे और जब तक हम उन लोगों को सुविधा प्रदान नहीं करेंगे तो जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा के भागी होना चाहते हैं और जब तक हम उनके आने जाने के लिए मार्ग सुगम नहीं कर देंगे जिससे वे इस देश को परदेश न समझें, तब तक हमें अपने उद्देश्य की पूर्ति में कठिनाई होगी।

मेरा यह निवेदन है कि इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने से हम इन्हें भारत की भावना का प्रतीक बना देंगे और यह प्रदर्शित कर देंगे कि भारत संकुचित राष्ट्रीयता का समर्थक नहीं है, किन्तु महात्मा गांधी तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर और अपने महान प्रधानमंत्री के सिद्धान्तों का अनुयायी है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समर्थक है। इस दृष्टि से हमें ऐसी कोई बात स्वीकार नहीं करनी चाहिये जिससे सर्वत्र सद्भावना जाग्रत होने में तथा अपनी भाषा पर हमारा अधिकार होने में बाधा पड़े।

इसलिये इन बातों को ध्यान में रखते हुये मैं सच्चे हृदय से अपील करता हूं कि इन मतभेदों को, जिनके कारण इस देश के प्रेमियों को बहुत दुःख हुआ है, अब मिटा दिया जाये और एक महान राजनैतिक दल ने जिस शक्ति, संगठन तथा एकता से स्वतंत्रता प्राप्त की है उसे हमारी इस महान सभा के विचार-विमर्श के अवसान-काल में विनष्ट तथा क्षीण न किया जाये। उससे हमसे जो द्वेष रखते हैं उन्हें तो अवश्य संतोष होगा किन्तु हमसे जो प्रेम करते हैं उन्हें अत्यन्त दुःख होगा। इसलिये श्रीमान्, मैं आपके द्वारा सच्चे हृदय से अपील करता हूं कि हम अपने मतभेदों को समाप्त करें और इस भाषा के प्रश्न के संबंध में ऐसा निर्णय करें जो सभी को स्वेच्छा से मान्य हो और इस बहस के समाप्त होने पर हम इस सभा से दलों में विभाजित होकर न जायें किन्तु भाइयों तथा एक ही माता अर्थात् भारत माता, की सन्तानों के समान जायें। *(उमुल हर्ष ध्वनि)*।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 281 की सूचना दी है। इस संशोधन के द्वारा मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है। माननीय फादर डिसौजा ने अभी समझौते के लिये बहुत

सबल तर्क उपस्थित किया किन्तु उन्होंने कोई सूत्र प्रस्तुत नहीं किया। मैंने अपने संशोधन द्वारा इसका प्रयास किया है। मैं यह अवश्य जानता हूं कि जो लोग समझौता कराने का प्रयास करते हैं उनकी क्या गति होती है। वे प्रायः दोनों पक्षों को प्रसन्न न करके उन्हें रुष्ट कर देते हैं। किन्तु एकता तथा सामंजस्य बनाये रखने के उद्देश्य से मैंने यह खतरा उठाया है।

मेरे विचार से संशोधन संख्या 65 में, अर्थात् मुंशी आयंगर सूत्र में, दोनों विचार धाराओं के मध्य का मार्ग बड़े सुन्दर ढंग से अपनाया गया है। उसमें तराजू के पलड़े बराबर रखे गये हैं। यह स्वीकार किया गया है कि इस भाषा का नाम हिन्दी होगा किन्तु एक निदेशक खण्ड रखकर हिन्दुस्तानी के समर्थकों को सान्तवना भी दी गई हैं उस खण्ड में भी संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के समर्थकों को भी प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है क्योंकि उसमें यह निर्धारित है कि मुख्यतः संस्कृत से ही शब्द लिये जायेंगे। साथ ही अन्य विचारधाराओं के लोगों को भी यह उपबन्ध रखकर प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है कि अन्य भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार नहीं किया जायेगा। यह बहुत ही प्रशंसनीय समझौता है और इस संबंध में जो उपबंध है वह बहुत संतुलित भी है। यदि एक अपवाद न होता तो मैं इसे नट की एक बहुत सुन्दर कला कहता। अपवाद यह है कि अंकों के संबंध में संतुलन बिगड़ गया है। और मैंने अपने संशोधन द्वारा उसे ठीक करने का प्रयास किया है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि अन्य सभी बातों के संबंध में एकमत होते हुये भी इस छोटी सी बात पर इतना अधिक मतभेद है।

यदि हम इन दो मसौदों को मिलायें तो हम देखेंगे कि इस विषय के संबंध में भी बहुत अधिक एकरूपता है। दोनों में यह उल्लिखित है कि वही अंक पन्द्रह वर्ष तक प्रयोग में रहेंगे। दोनों में यह उल्लिखित है कि पांच पांच वर्ष के अनन्तर, जब भाषा-आयोग और संसदीय समिति स्थिति का सिंहावलोकन करेंगी तो, उस समय उन्हें इसकी पूरी शक्ति प्राप्त रहेगी कि वे अंकों के प्रश्न के संबंध में निर्णय करें। इस प्रकार यह उपबंध दोनों मसौदों में समान रूप से है। अन्तर केवल यह है कि मुंशी आयंकर मसौदे में राजकीय प्रयोजनों के लिये काम में आने वाले अंकों के संबंध में केवल अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का ही उल्लेख है। इससे हमारे हिन्दी भाषी मित्र दुखित हैं। उनका विचार है कि यद्यपि उनकी भाषा को सम्मानित किया गया है किन्तु उसके अंकों को उससे निकाल कर अलग फेंक दिया गया है और एकाएक विदेशी अंकों को उन पर थोप दिया गया है। हमें उनके प्रति सहानुभूति होनी चाहिये।

मैं कह नहीं सकता कि उन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई या नहीं हुई, क्योंकि कुछ लोग कहते हैं कि उनकी उत्पत्ति भारत में नहीं हुई और वास्तव में मैं इस विवाद में भी नहीं पड़ना चाहता किन्तु इसे स्वीकार करना होगा कि उनका आकार इस समय विदेशी है, कम से कम हिन्दी भाषा के लिये वह विदेशी ही है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस संबंध में हमें अपने हिन्दी भाषी मित्रों की भावनाओं का आदर करना चाहिये। इन अंकों को एकाएक थोपने से कोई लाभ नहीं होगा। हिन्दी भाषा को उन्हें धीरे-धीरे तथा शांतिपूर्वक अंगीकार करने देना चाहिये। इसलिये अपने संशोधन में मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि पहले खंड में इन दोनों अंकों का उल्लेख होना चाहिये। हिन्दी के समर्थकों की विचार-

[श्री बी.एम. गुप्ते]

धारा के लोगों के लिये मैं यह रियायत करना चाहता हूं। इसलिये मैं दक्षिण भारत के अपने मित्रों से अपील करता हूं कि यदि आपका यह मत है ही कि हिन्दी के अंक राजकीय प्रयोजनों के लिये पन्द्रह वर्ष तक की लम्बी अवधि तक प्रयोग में रहें तो इसका उल्लेख खण्ड में क्यों नहीं कर दिया जाता? आप इस संबंध में इतना सोच-विचार क्यों कर रहे हैं?

किन्तु साथ ही हमारे मित्र श्री आयंगर इस पर जोर देते हैं, और ठीक ही जोर देते हैं, कि हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि अन्त में स्थायी रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अंक ही प्रयोग में रहेंगे। इस विचार-धारा से मैं सहमत हूं और इसलिये मैंने यह उपबन्ध रखा है कि भाषा-आयोग तथा संसदीय समिति के इस प्रश्न के संबंध में निर्णय करने के अधिकार के अधीन रहते हुए केवल अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का ही प्रयोग किया जायेगा।

मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से अपील करता हूं कि वे इस बात को स्वीकार कर लें। उन्हें कई कारणों से इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि भाषा का प्रश्न 95 प्रतिशत इस प्रकार हल हुआ है कि उससे उनको संतोष है। मेरी समझ में नहीं आता कि पांच प्रतिशत के संबंध में एकता तथा सद्भावना के हित में वे कुछ उदारता का परिचय क्यों नहीं देते। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है और यह सभी को विदित है कि समुन्नति तथा उपयोगिता की दृष्टि से जहां तक हो सके अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को ही काम में लाना चाहिये, विशेषतया इसलिये कि उनकी उत्पत्ति भारत में हुई है किन्तु मैं उस पर जोर नहीं दूंगा। मैं इस पर जोर देता हूं कि जब आपकी मांग 95 प्रतिशत पूरी हो गई है तो आप केवल पांच प्रतिशत के लिये यह कलह, कटुता तथा दुर्भाव क्यों उत्पन्न करते हैं?

इसलिये मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि इस पांच प्रतिशत के लिये जो हल निकाला गया है उसे वे स्वीकार कर लें। जब हम समझौते से तथा सद्भाव से बड़े-बड़े प्रश्नों को हल कर चुके हैं तो उनकी तुलना में यह एक छोटा सा मामला है। यदि हम बहुमत के आधार पर इसके संबंध में निर्णय करें तो उससे लोगों के हृदय में कटुता रह ही जायेगी।

हम इस समय जो कुछ कार्य करेंगे उससे हमारा नवीन संविधान पारित होने के पूर्व ही संकट में पड़ सकता है। जो भी दल पराजित होगा वह संविधान के संशोधन के लिये आन्दोलन चला सकता है और दूसरा दल भी हिंसापूर्ण प्रतिक्रिया का प्रदर्शन कर सकता है। इस प्रकार बहुत काल तक विवाद चलता रहेगा। इसलिये मैं इस आदरणीय सभा से यह अपील करता हूं कि हम कोई ऐसा अकार्य न करें जिससे इतिहास तथा आने वाली पीढ़ियां यह कहें कि हम एकता स्थापित करने के उद्देश्य से एक भाषा की खोज में निकले किन्तु अंकों ने हममें फूट डाल दी। मैं इसका बहुत इच्छुक नहीं हूं कि मेरा सूत्र ही स्वीकार किया जाये किन्तु इसके लिये अवश्य इच्छुक हूं कि समझौता हो जाये। मैं केवल यह चाहता हूं कि इस विषय के संबंध में इस सभा में मतभेद न हो, विशेषतया जबकि उसके सारवान अंश के संबंध में समझौता है।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रश्न को छोड़कर एक अन्य प्रश्न के संबंध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, जिसका इससे कहीं अधिक महत्व है और जिसके संबंध में बहुत काल तक दिलचस्पी रह सकती है। वह प्रश्न यह है कि इस भाषा का भविष्य में किस प्रकार का विकास हो। कार्यावली में कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनका उद्देश्य यह है कि संस्कृत निष्ठ हिन्दी राज-भाषा हो। इन संशोधनों के अतिरिक्त कुछ प्रभावपूर्ण क्षेत्रों में हिन्दी को संस्कृत निष्ठ बनाने की प्रवृत्ति दिखाई जा रही है। इस प्रवृत्ति के कारण इस भाषा को राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई हो रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विचार धारा के लोग संस्कृत से शब्द लेने के संबंध में जो उपबन्ध रखा गया है मुख्यत: उसी से लाभ उठायेंगे। इस उपबन्ध पर मैं कोई आपत्ति नहीं करता हूं किन्तु मैं यह चाहता हूं कि कोई भी व्यक्ति उससे अनुचित लाभ न उठाये। यह एक समझौता है और इसे समझौता समझ कर ही व्यवहार में लाना चाहिये। मैं संस्कृत का विरोधी नहीं हूं। हममें से अधिकांश उसका विरोध कर ही नहीं सकते क्योंकि वह भाषा हमारे रक्त में प्रविष्ट है। वह हमारी मातृ-भाषाओं की स्रोत है और हमारी संस्कृति का भंडार है। केवल इतनी ही बात नहीं है कि मैं संस्कृत का विरोधी नहीं हूं मैं संस्कृत साहित्य की प्रशंसा करता हूं। संसार का महानतम दर्शन, गहनतम विचार तथा सुन्दरतम कवित्व संस्कृत भाषा में ही है।

इस महानता के होते हुये भी, तथा इस महानता से मोहित होने पर भी, मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि संस्कृत जनसाधारण की भाषा हो सकती है और मैं यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी जनसाधारण की भाषा हो सकती है। इस लोकतंत्र तथा वयस्क मताधिकार के युग में जब हम इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने बैठें तो हमें सबसे पहले जनसाधारण की ओर ही ध्यान देना चाहिये। हमें जनसाधारण की भाषा बोलने में समर्थ होना चाहिये। अन्यथा जहां तक कांग्रेसजनों का सम्बन्ध है, क्योंकि यहां हममें से अधिकांश कांग्रेस-जन ही हैं, हम उसी पीढ़ी को ठुकरायेंगे जिससे हम ऊपर चढ़े हैं। चूंकि जन-साधारण ने हमारे महान संगठन, अर्थात् भारतीय कांग्रेस के साथ सहयोग किया इसी कारण आज हम यहां हैं। जनसाधारण के सहयोग से ही उस संगठन को सारे भारत पर शासन करने की शक्ति प्राप्त हो गई। इसलिये मेरा निवेदन है कि हम कृत्रिम संस्कृतनिष्ठ हिन्दी द्वारा अपने और जन साधारण के बीच एक कृत्रिम दीवार न खड़ी करें। हम भविष्य में अपनी भाषा का विकास इस प्रकार करें कि उसे जनसाधारण आसानी से समझ सके। मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से अपील करता हूं कि वे अपने लक्ष्य को नीचा न करें। वे हिन्दी को राज-भाषा के पद पर ही प्रतिष्ठित करके संतोष न कर लें किन्तु उसे सारे राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा भी बनायें। मैं यह स्वीकार करता हूं कि साहित्यिक हिन्दी में संस्कृत का प्राधान्य रहे। जनसाधारण की भाषा में भी संस्कृत का एक स्थान है। किन्तु हम जल्दी बाजी न करें। जल्दी में हम उसका कोई स्वरूप निश्चित न करें। उसका स्वाभाविक विकास होने दीजिये। मुझे आशा है कि शीघ्र ही वह दिन भी आयेगा जब हिन्दी

[श्री बी.एम. गुप्ते]

न केवल राज-भाषा के पद पर बल्कि राष्ट्र-भाषा के पद पर भी प्रतिष्ठित होगी जिसे इस महान देश में सर्वत्र हर कोई आसानी से बोल सकेगा और आसानी से समझ सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न के संबंध में इस सभा में तथा अन्यत्र बहुत वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्क हुआ है। इस पर जो समय लगा है अथवा इससे जो भावनायें जाग्रत हुई हैं उनके कारण मुझे स्वयं कोई खेद नहीं है। सम्भव है कभी मुझे ये भावनायें प्रिय न लगती हों, किन्तु आखिर हमारे सामने जो प्रश्न है वह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है और यह ठीक ही है कि सजीव लोग उसके संबंध में सजीव ढंग से विचार करें।

हमने विद्वतापूर्ण भाषण सुने हैं और ऐसे भाषण भी सुने हैं जो संभवत: भावनापूर्ण ही थे। मैं कह नहीं सकता कि मैं अपने को किस श्रेणी में रखूं *(हास्य)*। मेरे लिये न तो पहली श्रेणी उपयुक्त है न दूसरी। इसलिये सम्भवत: मुझे आपको किसी तीसरी श्रेणी में रखना होगा। इस प्रश्न में मेरी कई दृष्टिकोणों से बहुत दिलचस्पी है। इस सभा में तथा अन्यत्र जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें मैं सुनता रहा हूं और मुझे इसका खेद है कि कभी इस संबंध में मैं स्वयं उत्तेजित हो उठा हूं। मैंने इन सैकड़ों संशोधनों को भी पढ़ा है किन्तु मेरी यह धारणा रही है कि यह विषय जहां तहां शाब्दिक संशोधन करने का नहीं है। यह उससे कहीं गहन विषय है।

मेरे मित्र तथा सहकारी श्री गोपालस्वामी आयंगर ने सभा के सामने जो संशोधन रखा है उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं (हर्ष ध्वनि)। मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं, वह इस कारण नहीं कि मैं यह समझता हूं कि वह हर प्रकार समुपयुक्त है, क्योंकि यदि मुझे पूरी स्वतंत्रता दी जाये तो मैं उसमें जहां तहां परिवर्तन करना चाहूंगा। किन्तु मैं यह जानता हूं कि बराबर कोशिश करने पर तथा विचार-विमर्श करने पर हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं और उसके फलस्वरूप एक सुसम्बद्ध चीज पैदा हुई है। किसी ऐसी सुसम्बद्ध चीज में परिवर्तन करना, जिसमें एक ही विचारधारा सन्निहित हो एक कठिन कार्य हैं आप जहां तहां परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु मेरे विचार से इससे न तो मूल संशोधन का उद्देश्य पूरा हो सकेगा और न परिवर्तन करने वाले का ही। यदि पहले संशोधन को पसंद नहीं किया जाता है और उसे स्वीकार नहीं किया जाता है तो अच्छा यह होगा कि कोई अन्य सम्बद्ध संशोधन उपस्थित किया जाये। यदि मुझे मौका दिया जाता तो मैं सम्भवत: उस संशोधन के कुछ अंगों पर जितना जोर दिया गया है उससे अधिक जोर देता किन्तु जो बातें हुई हैं उन सभी को ध्यान में रखते हुये मेरे विचार से यह संशोधन न केवल अधिक से अधिक समझौते का द्योतक है किन्तु इस कठिन समस्या का बहुत सोच-विचार के पश्चात् निकाला हुआ हल भी है।

आपके सामने जो विभिन्न संशोधन हैं उनमें से किसी के संबंध में मैं नहीं बोलने जा रहा हूं और न उस संशोधन का विश्लेषण ही करने जा रहा हूं जिसका मैं समर्थन कर रहा हूं। मैं आपका ध्यान कुछ अन्य बातों की ओर, कुछ अन्य आधारभूत बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो इस सभा में तथा देश में इस प्रश्न संबंधी विवाद से उत्पन्न हुई हैं। आखिर यह शब्दों का संघर्ष नहीं है, यद्यपि यहां वह संघर्ष शब्दों से प्रकट किया गया है। यह विभिन्न दृष्टिकोणों का, विभिन्न दिशाओं की ओर लगी हुई दृष्टियों का संघर्ष है।

यह प्राय: कहा जाता है और हम अवश्य ही एक नवयुग के द्वार पर खड़े हैं। प्रत्येक युग का अन्त होता है और वह एक नये युग को जन्म देता है। किन्तु संसार में और विशेषत: भारत में इस समय जो घटनायें घटित हो रही हैं उन्हें देखते हुये यह प्रकट होता है कि हम एक जन्म-मृत्यु के चक्र के साथ संलग्न हैं। जब इन दो घटनाओं का संयोग होता है तो बड़ी बड़ी समस्यायें उत्पन्न होती हैं और जिन लोगों को इन्हें हल करना होता है उन्हें ऊपर ऊपर की बातों से विमोहित न होकर आधारभूत प्रश्नों के बारे में सोचना होता है। मैं कह नहीं सकता कि इस सभा के सभी माननीय सदस्यों ने इन आधारभूत प्रश्नों पर पर्याप्त विचार किया है या नहीं। बहुत से सदस्यों ने अवश्य ही किया होगा। इन आधारभूत प्रश्नों का अपना अस्तित्व है। हमारा उद्देश्य क्या है? हम क्या करने जा रहे हैं? हम किधर जाना चाहते हैं?

भाषा हमारी बहुत ही निकट संबंधिनी है। समाज में जो बातें विकसित हुई हैं उनमें से इसका सबसे अधिक महत्व है और वास्तव में इसी से अन्य बातें विकसित हुई हैं। भाषा एक बहुत बड़ी चीज है इससे हमें अपना ज्ञान होता है। जब भाषा का विकास होता है तो हम उसके द्वारा अपने पड़ौसी को जानने लगते हैं, अपने समाज को जानने लगते हैं, और अन्य समाजों को भी जानने लगते हैं। भाषा से एकता उत्पन्न होती है और फूट भी पड़ती है। यह दो भाषा-भाषियों तथा दो देशों को एक दूसरे के नजदीक भी ले आती है और उन्हें एक दूसरे से दूर भी कर देती है। इसके ये दो गुण हैं इसलिये जब आप एक भाषा के संबंध में विचार करें तो आप इन दो गुणों पर भी विचार करें।

मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि यहां हम सभी लोग भारत की एकता को सुदृढ़ बनाना चाहते हैं। इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। किन्तु इस भाषा के प्रश्न का तथा इसके संबंध में लोगों के दृष्टिकोणों का, विश्लेषण करते हुये कुछ लोग विचार कर सकते हैं कि इससे एकता उत्पन्न होगी और अन्य लोग यह विचार कर सकते हैं कि यदि इसको ठीक प्रकार हल नहीं किया गया तो यह विकटकारी सिद्ध हो सकता है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इन बड़ी बड़ी बातों को ध्यान में रखकर इस प्रश्न पर विचार करें और हम अपने अपने दृष्टिकोणों से विमोहित न हों।

हमारे राष्ट्रपिता बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने हमारे राष्ट्र के भविष्य को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया था, और इस प्रश्न पर भी विचार किया था। उन्होंने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया और अपने जीवन भर वे अपनी सलाह बराबर देते गये। उससे यह प्रकट होता है

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

कि जैसे अन्य प्रश्नों के संबंध में भी उनकी दृष्टि उन आधार-स्तम्भों पर रहती थी जिन पर हमारा राष्ट्र टिका हुआ है। आपको स्मरण होगा कि वे जिस वस्तु को भी खर्च करते थे वह एक आधारभूत वस्तु होती थी। वे हमारे अस्तित्व की ऊपर की बातों पर अपना समय तथा अपनी शक्ति नष्ट नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने अपने निराले ढंग से इस प्रश्न पर विचार किया था। एक महान साहित्यिक होते हुए भी, यद्यपि उन्हें ज्ञात नहीं था कि वे एक साहित्यिक भी हैं, उन्होंने इस प्रश्न पर कभी किसी साहित्यिक की दृष्टि से विचार नहीं किया था। वे हमेशा भारतीयों के तथा भारतीय राष्ट्र के भविष्य के बारे में सोचते रहते थे और एक-एक ईंट रखकर उसका निर्माण करते रहते थे ताकि हमें अपने दोषों से मुक्ति मिल सके। चाहे वह दोष विदेशियों के प्रभुत्व का हो, अथवा गरीबी का, अथवा हमारे ही बीच की असमता, विभेद, अस्पृश्यता आदि के दोष हों वे प्रत्येक पर ऊंचे स्तर से विचार करते थे और इस संबंध में सोचते रहते थे कि अमुक अमुक कदम से हम जाग्रत तथा शक्तिशाली भारत का निर्माण कर सकेंगे अथवा उससे फूट पड़ेगी और हम अशक्त हो जायेंगे।

उन्होंने सबसे पहले हमें यह शिक्षा दी कि यद्यपि अंग्रेजी भाषा एक महान भाषा है—मेरा भी यही विचार है कि अंग्रेजी से हमारा बहुत हितसाधन हुआ है और उसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा है तथा उन्नति की है—किन्तु किसी विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र महान नहीं हो सकता। आखिर क्यों? क्योंकि कोई भी विदेशी भाषा लोगों की भाषा नहीं हो सकती। उससे दो श्रेणियां स्थापित हो जाती हैं। एक श्रेणी उन लोगों की जो विदेशी भाषा की शैली के अनुसार विचार करते हैं और कार्य करते हैं और एक श्रेणी उन लोगों की जो दूसरी ही दुनिया में बसते हैं। इसलिये राष्ट्रपिता ने हमें यह शिक्षा दी कि हम अपना अधिक से अधिक काम अपनी ही भाषा में करने का प्रयास करें।

उन्हें कुछ अंश में सफलता भी प्राप्त हुई और वास्तव में कुछ ही अंश में प्राप्त हुई। सम्भवत: इस कारण कि देश की स्थिति के कारण उससे अधिक सफलता प्राप्त करना कठिन था। किन्तु यह एक तथ्य है कि उनके बराबर शिक्षा देने पर भी तथा इस सभा में उपस्थित कई माननीय सदस्यों के हमारी भाषाओं की उन्नति के लिये प्रयास करने पर भी हम अपना बहुत सा राजनैतिक तथा अन्य प्रकार का कार्य अंग्रेजी भाषा में ही करते रहते हैं। किन्तु यह सच है कि हम स्वयं तथा हमारे करोड़ों लोग एक विदेशी भाषा के सहारे बहुत आगे नहीं जा सकते हैं। इसलिये चाहे अंग्रेजी भाषा कितनी ही महान क्यों न हो—और वास्तव में वह महान है ही—हमें अपना राष्ट्रीय कार्य, अपना सार्वजनिक अथवा निजी कार्य, जहां तक सम्भव हो सके अपनी विभिन्न भाषाओं में तथा विशेषत: उस भाषा में करना है जिसे आप सारे भारत में प्रयोग में लाने के लिये चुनें।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपिता इस पर जोर देते थे कि यह भाषा लोगों की भाषा होनी चाहिये और केवल विद्वान लोगों की भाषा नहीं होनी चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्वान लोगों की भाषा मूल्यवान अथवा आदरणीय नहीं है। हमें विद्वत्ता की, कवियों की, महान लेखकों तथा इस प्रकार के अन्य लोगों की

आवश्यकता है। किन्तु आधुनिक युग में अतीत काल से भी अधिक सार इस तथ्य में है कि यदि कोई भाषा लोगों की भाषा से दूर हुई तो वह महान नहीं हो सकती। वास्तव में जब विद्वानों का जनसाधारण से यथोचित संबंध स्थापित होता है तभी कोई भाषा महान तथा सशक्त होती है। भारत में हमें दो भाषाओं के उदाहरण मिलते हैं, यद्यपि मैं इन भाषाओं से अनभिज्ञ हूं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने यह संबंध बंगला में स्थापित किया और इस प्रकार उस भाषा को पहले से कहीं अधिक महान बना दिया। गांधीजी ने गुजराती भाषा पर इससे भी अधिक प्रभाव डाला। अन्य लोगों के भी उदाहरण हैं किन्तु ये महापुरुष थे।

जिस भाषा को हम सारे भारत के लिये स्वीकार करें उसके संबंध में, अथवा किसी भी भाषा के संबंध में, चाहे वह सारे भारत की भाषा हो या न हो, हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि हम शुद्धता तथा स्पष्टता के प्रेमियों के हाथी-दांत के बने हुए महल में निवास न करें। भाषा के संबंध में यद्यपि शुद्धता तथा स्पष्टता के प्रेमियों का अपना स्थान है और उन्हें बने रहना चाहिये किन्तु भाषा को शुद्धता प्रेमियों अथवा इसी प्रकार के अन्य लोगों की पटरानी बनाना एक खतरनाक बात है क्योंकि तब उसका जनसाधारण से कोई संबंध नहीं रह जाता। इसलिये आपको दोनों बातों की आवश्यकता है। आपको शुद्ध, स्पष्ट, गम्भीर और व्यापक अर्थ वाली भाषा की भी आवश्यकता है और ऐसी भाषा की भी आवश्यकता है जिसका जनसाधारण से निकट संबंध हो और जो जनसाधारण पर ही आश्रित हो।

इस विषय के संबंध में जिस अंतिम बात की ओर राष्ट्रपिता ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था वह यह है कि यह भाषा भारत की सम्यक् संस्कृति की प्रतीक होनी चाहिये। जहां तक हिन्दी भाषा का संबंध है उसमें उस सम्यक् संस्कृति का प्रतिनिधित्व होना चाहिये जो उत्तर-भारत में विकसित हुई, जहां मुख्यतः हिन्दी भाषा का ही बोलबाला रहा। उसमें उस सम्यक् संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिये जो उसे भारत के अन्य भागों से प्राप्त हुई। इसी कारण राष्ट्रपिता ने हिन्दुस्तानी शब्द प्रयोग किया। उन्होंने यह शब्द किसी विशेष अर्थ में प्रयोग नहीं किया बल्कि इस साधारण अर्थ में प्रयोग किया कि यह वह सम्यक् भाषा है जो लोगों की भाषा है, और उत्तर भारत में विभिन्न वर्गों तथा अन्य लोगों की भाषा भी है। इस भाषा की ओर उन्होंने लोगों का तथा राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया। यह कहना छोटा मुंह बड़ी बात होगी कि मैं उनके विचारों से सहमत हूं अथवा असहमत हूं किन्तु लगभग तीस वर्ष से भाषा के संबंध में मैं अपने तुच्छ ढंग से इसी मत का समर्थन करता रहा। जिस मत का मैंने अपने सारे राजनैतिक जीवन में समर्थन किया है उसका अब परित्याग करने के लिये यदि यह सभा मुझसे कहे तो यह मेरे लिये एक कठोरता होगी।

केवल यही नहीं, मेरा यह विश्वास है कि भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में, एक पृथक् राष्ट्र नहीं और ऐसा राष्ट्र भी नहीं जो संसार से अलग रहना चाहे किन्तु ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने और जिसे आत्मविश्वास हो और जो संसार के साथ सहयोग करके, अपना जीवन व्यतीत करे, महात्मा जी का दृष्टिकोण ही सबसे ठीक दृष्टिकोण था। मेरे विचार से अच्छा यह होता है कि इस प्रस्ताव में इस पर अधिक जोर दिया जाता किन्तु जो कुछ हुआ है और जिस प्रकार यह प्रस्ताव रचा गया

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

है उसे देखते हुये मैंने इसका स्वागत किया विशेषतया इसलिये कि इसके एक भाग में उन बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जिन्हें मैं बता चुका हूं। जैसाकि मैं कह चुका हैं, मेरे विचार से अच्छा यह होता कि इसकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया जाता। चाहे जो भी हो ध्यान आकृष्ट किया ही गया है, इसलिये मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया है। यदि दुर्भाग्य से इस ओर ध्यान आकृष्ट नहीं किया जाता तो मेरे लिये इस प्रस्ताव का स्वीकार करना कठिन हो जाता।

इस समय कई बातों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि एक नये युग का उदय हो रहा है। और इस प्रस्ताव के संबंध में भी यही कहा जा सकता है कि इससे भारत में भाषा संबंधी क्रान्ति का सूत्रपात हो सकता है। यह एक बहुत ही बड़ी क्रान्ति होगी और इसका बहुत दूर तक प्रभाव पड़ेगा। हमें बड़ी सावधानी से उसे ठीक रूप देना है तथा उसे ठीक सांचे में ढालना है और उसे ठीक दिशा की ओर ले जाना है। भाषा का निर्माण मनुष्य करते हैं किन्तु फिर वह भाषा भी उन मनुष्यों का तथा उनके समाज का निर्माण करती है। यह प्रश्न क्रिया और प्रतिक्रिया का है। यह कहा जा सकता है कि यदि कोई भाषा एक अशक्त भाषा हो, अथवा अस्पष्ट भाषा हो, अथवा केवल अलंकारयुक्त ही हो तो आप इन गुणों को उन लोगों में भी प्रतिबिम्बित पायेंगे जो उस भाषा को बोलते हैं। यदि भाषा अशक्त है तो वे लोग भी बहुत कुछ अशक्त ही होंगे और यदि वह अलंकारयुक्त ही है और कुछ नहीं है, तो वे भी अलंकारयुक्त ही हो जायेंगे। इसलिये इसका महत्व है कि आप उसे किस दिशा की ओर ले जायें। यदि कोई भाषा निराली होती है तो उस भाषा को बोलने वाले लोगों के विचार तथा कार्य भी निराले हो जाते हैं।

जब मैंने आरम्भ में कहा था कि इस तर्क और बहस के पीछे विभिन्न दृष्टिकोण हैं तो मेरा आशय यही था। आपकी दृष्टि किस ओर है? इस नवयुग के द्वार पर खड़े होकर क्या आप पीछे की ओर ही मुंह मोड़े रहेंगे और उसी ओर टकटकी लगाये हुये रहेंगे अथवा क्या आप अपने आगे भी देखेंगे? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका उत्तर हममें से प्रत्येक व्यक्ति को देना है क्योंकि इस समय देश में स्वभावत: अतीत की ओर ही टकटकी लगा कर ही देखने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। प्रश्न यह नहीं है कि हम अतीत से संबंध विच्छेद कर दें। यह एक अन्तर्गत तथा खतरनाक बात होगी क्योंकि अतीत से ही हमें अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त है। हमारी जड़ अतीत ही में सुस्थिर है। यदि हम अतीत से संबंध-विच्छेद करते हैं तो हमारी जड़ ही उखड़ जाती है। हम दूसरों की नकल करके बहुत आगे नहीं बढ़ सकते किन्तु यह भी सच है कि जड़ तो जमीन में हो और विकास आकाश की ओर हो और आप हमेशा जमीन की ओर जड़ों की ओर ही न देखते रहें। आगे भी बढ़ा जाता है और हमेशा पीछे ही नही हंटा जाता। चाहे आप यह चाहें या न चाहें किन्तु संसार की शक्तियां तथा धारायें आपको आगे ढ़केलेंगी। यदि आपकी दृष्टि पीछे की ओर होगी तो आप बार-बार ठोकर खाकर गिर पड़ेंगे।

इसलिये इस प्रश्न को हल करने में यह एक आधारभूत बात है कि आपकी दृष्टि किस ओर है—आगे की ओर अथवा पीछे की ओर? लोग संस्कृति आदि की चर्चा करते हैं और ठीक ही कहते हैं क्योंकि किसी भी राष्ट्र का सुदृढ़

सांस्कृतिक आधार होना आवश्यक है और, जैसाकि मैं कह चुका हूं। उस संस्कृति की जड़ें लोगों की प्रकृति तथा उनके अतीत में सुस्थिर होनी चाहिये। चाहे कोई संस्कृति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसकी अच्छी से अच्छी नकल करने पर भी कोई व्यक्ति सुसंस्कृत नहीं हो सकता क्योंकि उसकी संस्कृति होगी आखिर नकली ही। उसे स्वीकार करना ही होगा। आप अवश्य ही अपनी जड़ें उस महान शक्तिशाली संस्कृति में जमाये रखें जिसका उदय सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था और जो इतनी बलशालिनी हो उठी थी कि बाहर से तथा अन्दर से प्रहार पर प्रहार होने पर भी, तथा हमारे गलित पलित हो जाने पर भी, सजीव रही तथा हमें शक्ति प्रदान करती रही। यह संस्कृति बनी ही रहनी चाहिये। किन्तु साथ ही जब आप एक नव युग के द्वार पर हैं तो हमेशा अतीत की ही चर्चा करके आप उसमें ठीक ढंग से प्रवेश नहीं करेंगे। हमारे सामने कई प्रश्न हैं, उनमें से एक प्रश्न भाषा का भी है।

संस्कृतियां भी कई प्रकार की हैं। एक संस्कृति राष्ट्र की तथा लोगों की होती है, जिसका अपना महत्व है, और साथ ही युग की भी संस्कृति होती है जिसे युगधर्म कहते हैं। यदि आप युगधर्म के अनुरूप नहीं चलेंगे तो आप अपने युग के साथ कदम नहीं मिला सकेंगे। चाहे आपकी संस्कृति कितनी ही महान क्यों न हो यदि आप युगधर्म के अनुरूप न चलेंगे तो आप युग के साथ नहीं चल सकेंगे। हमारे देश के तथा अन्य देशों के बुद्धिमान लोग यही शिक्षा देते रहे हैं। एक संस्कृति होती है राष्ट्रीय संस्कृति और एक संस्कृति होती है अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति। इसके अतिरिक्त एक संस्कृति ऐसी होती है जो परम तथा सनातन होती है और उसके कुछ परम आदर्श होते हैं जिनका अनुसरण करना आवश्यक होता है। एक संस्कृति परिवर्तनशील होती है जिसका सामाजिक महत्व के अतिरिक्त अन्य कोई महत्व नहीं होता। उसका किसी विशेष काल, किसी पीढ़ी अथवा युग के लिए महत्व होता है। किन्तु वह, बदलता अवश्य है। युग में परिवर्तन होने पर भी यदि आप उसी को अपनाये रहते हैं तो आप पिछड़ जाते हैं और आप बदलते हुए मानव-समाज के साथ कदम मिलाने में असमर्थ हो जाते हैं। सामाजिक संस्कृति और विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृति भी होती है।

पहले चाहे जो भी स्थिति रही हो किन्तु आज इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि एक शक्तिशालिनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति आज संसार भर में व्याप्त है। यदि आप चाहें तो आप उसे यांत्रिक युग की अथवा उद्योग धंधों और वैज्ञानिक विकास पर आधृत संस्कृति कह सकते हैं। क्या यहां कोई ऐसा माननीय सदस्य उपस्थित है जो यह कह सकता है कि इस संस्कृति को स्वीकार न करने से अथवा अपने लिये उपयोगी बनाने पर और उसकी आधारभूत बातें मानकर भी स्वीकार न करने से केवल पुरानी विचारधाराओं की बार-बार दुहाई देते रहने से हम अधिक उन्नति कर सकते हैं? यदि मुझे क्षमा किया जाये तो मैं यह कहूंगा कि अपने इतिहास में एक समय चूंकि हमने संसार की संस्कृति से जिसमें मैं युद्ध-कौशल तथा अन्य सभी बातों को सम्मिलित करता हूं, संबंध विच्छेद कर लिया था इसलिये हम पिछड़ गये और अन्य लोग हमसे उत्कृष्ट न होने पर भी केवल इस कारण हम पर विजयी हुये कि वे सामाजिक संस्कृति के साथ चलते थे। वे आये और उन्होंने

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

हमें पराजित किया तथा बार-बार हम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अंग्रेज आये और उन्होंने हम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। क्यों? वह इसलिये कि उनकी संस्कृति सामाजिक संस्कृति थी और वह हमारी प्राचीन संस्कृति से उत्कृष्ट थी। वह भले ही आधारभूत तथा सनातन बातों के संबंध में हमारी संस्कृति से अधिक उत्कृष्ट न रही हो किन्तु युगधर्म की दृष्टि से वह हमारी संस्कृति से अधिक उत्कृष्ट थी। वे आये और उन्होंने हमें पराजित किया तथा इतने अधिक काल तक हम पर अपना प्रभुत्व जमाये रहे।

वे अब चले गये हैं। क्या हम अपने विचारों को तथा अपने कार्यों को फिर उसी प्रकार की संस्कृति के अनुरूप बनाने जा रहे हैं जिसके कारण हम गुलाम हो गये? इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रत्येक माननीय सदस्य कहेगा "नहीं"। किन्तु फिर भी मैं कहूंगा कि जो कुछ मैं कह रहा हूं उससे इस विचारधारा का निकट संबंध है। यह विचारधारा उसी की ओर ले जाती है। यदि आप पीछे की ओर ही देखते रहें यदि आप उसी प्रकार की चर्चा करते रहें जिस प्रकार की चर्चा माननीय सदस्य कल और आज करते रहे हैं तो वह उसी परिणाम की ओर ले जायेगी। जहां तक मेरा संबंध है मुझे उस परिणाम पर पहुंचने में हिचकिचाहट ही नहीं होती है बल्कि मैं उसका विरोध भी करना चाहता हूं क्योंकि मैं समझता हूं कि वह भारत के लिये हानिकर है। आपको तथा मुझे भारत के लोगों पर तथा भारतीय राष्ट्र पर अटल विश्वास है। मुझे विश्वास है कि चाहे भारत के सामने इस समय कितनी ही कठिनाइयां क्यों न हों किन्तु वह अवश्य ही उन्नति करेगा और तीव्र गति से आगे बढ़ेगा। किन्तु यदि हम भारत के पैरों को जीर्ण रीति-रिवाजों से जकड़ देते हैं और वह ठोकर खाकर गिर पड़ता है तो इसके लिये दोषी कौन है? हमारे सामने यह आधारभूत प्रश्न है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य दृष्टि से भी आप इस भाषा के प्रश्न को देखिये। अभी हाल तक, मैं कहूंगा एक पीढ़ी पहले तक फ्रेंच यूरोप की तथा अन्य बड़े-बड़े भूभागों की राजनयिक तथा सांस्कृतिक भाषा थी। यूरोप में ही अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन तथा स्पेनिश के समान महान भाषाएं थीं और इसके अतिरिक्त एशियाई भाषाएं भी थीं। किन्तु फिर भी यूरोप में राजनयिक तथा सांस्कृतिक प्रयोजनों के लिये फ्रेंच ही प्रयोग की जाती थी। आज उसे यह प्रतिष्ठित पद प्राप्त नहीं है। किन्तु आज भी राजनयिक तथा सार्वजनिक कार्यों में उसका बहुत महत्व है। किसी ने भी फ्रेंच पर आपत्ति नहीं की। किसी अंग्रेज, अथवा रूसी, अथवा जर्मन, अथवा पोल ने फ्रेंच भाषा पर आपत्ति नहीं की। इस प्रकार यह सभी भाषाएं विकसित होती रहीं और आज यह कहा जा सकता है कि सम्भवत: जिस उच्च राजनयिक पद पर फ्रेंच प्रतिष्ठित थी उस पद पर अंग्रेजी आ रही है।

फ्रेंच के पूर्व यूरोप की राजनयिक भाषा लैटिन थी। इसी प्रकार भारत में बहुत काल तक संस्कृति तथा राजनयिक भाषा संस्कृत रही है। यह भाषा जनसाधारण की भाषा नहीं थी किन्तु विद्वान तथा शिष्ट लोगों की भाषा थी और राजनयिक प्रयोजनों आदि के लिये काम में आती थी। यदि हम पिछले एक हजार वर्ष के इतिहास को देखें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि केवल भारत में ही नहीं किन्तु सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया में, और केन्द्रीय एशिया के कुछ भागों में भी विद्वानों

की भाषा संस्कृत ही थी। यद्यपि उस सीमा तक नहीं थी जिस सीमा तक भारत में थी। सम्भवत: सभा को यह विदित है कि इस समय संस्कृत के जो सबसे प्राचीन नाटक उपलब्ध हैं वे भारत में नहीं मिले बल्कि गोबी रेगिस्तान की सीमा पर तुर्फान प्रदेश में मिले।

संस्कृत के पश्चात् भारत की तथा एशिया के बहुत बड़े भाग की सांस्कृतिक तथा राजनयिक भाषा फारसी हुई। भारत में उसे यह पद इस कारण प्राप्त हुआ कि यहां का शासन ही बदल गया किन्तु साथ ही वह एशिया के एक बहुत बड़े भाग की सांस्कृतिक तथा राजनयिक भाषा हो गई। वह इस कारण "पूर्व की फ्रेंच" कही जाती थी और अब भी इसी नाम से कही जाती है। जब ये परिवर्तन हो रहे थे तो अन्य भाषाओं का भी विकास हो रहा था। यूरोप के लिये फ्रेंच और एशिया के लिये फारसी बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई। अन्य देशों तथा राष्ट्रों ने भी इन भाषाओं को स्वीकार किया। सम्भव है भारत ने उसे मुख्यत: इस कारण स्वीकार किया हो कि नये शासकों का उस पर प्रभुत्व था किन्तु ऐसे देशों ने भी उसे स्वीकार किया जिन पर उनका प्रभुत्व नहीं था और जिनकी वह भाषा भी नहीं थी क्योंकि फारसी इन प्रयोजनों के लिये एक उपयुक्त भाषा समझी जाती थी। इन लोगों की भाषाओं का विकास हुआ।

हमने अंग्रेजी इस कारण स्वीकार की कि वह विजेता की भाषा थी। जब हमने उसे स्वीकार किया तो इस कारण नहीं स्वीकार किया कि वह एक महत्वपूर्ण भाषा है यद्यपि वह उस समय भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाषा थी। हमने उसे केवल इस कारण स्वीकार किया कि हम पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था। उसने हमारे लिये विदेशी विचारधारा, विदेशी विज्ञान आदि के द्वार खोल दिये और उसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा। अंग्रेजी भाषा द्वारा हमने जो कुछ सीखा है उसके लिये हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिये। किन्तु साथ ही उसने हम अंग्रेजी जानने वालों और अंग्रेजी न जानने वालों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा कर दी जो, किसी भी राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होती। सम्भवत: हम आज इसे सहन नहीं कर सकते हैं। इसी कारण यह समस्या भी है।

अंग्रेजी चाहे कितनी ही अच्छी और महत्वपूर्ण भाषा क्यों न हो किन्तु हम इसे सहन नहीं कर सकते कि एक वर्ग अंग्रेजी जानने वाले विद्वानों का हो और एक बहुत बड़ा वर्ग अंग्रेजी न जानने वाले लोगों का हो। इसलिये हमें अपनी ही भाषा को अपनाना चाहिये। किन्तु अंग्रेजी, चाहे आप उसे राज-भाषा कहें अथवा अन्य कोई भाषा, अथवा चाहे आप उसका विधि में उल्लेख करें या न करें किन्तु भारत में अंग्रेजी एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में और एक ऐसी भाषा के रूप में रहनी चाहिये जिसे बहुत से लोग सीखें। और हो सके तो अनिवार्य रूप से सीखें। आखिर क्यों? इस कारण कि अब अंग्रेजी भाषा का उस समय से कहीं अधिक महत्व है जब अंग्रेज यहां आये थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय कोई भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हो सकती है तो वह अंग्रेजी ही है। वह इस समय अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है किन्तु इस समय वह संसार में सबसे वृहत् तथा व्यापक भाषा है। यदि हम संसार के अन्य देशों से सम्पर्क रखना चाहते हैं और हमें सम्पर्क रखना ही चाहिये तो बिना विदेशी भाषाओं को सीखे हुये हम उनसे सम्पर्क

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

कैसे रख सकते हैं? मुझे आशा है कि हममें से बहुत से लोग विदेशी भाषाओं को सीखेंगे जैसे कि रूसी भाषा को जो बहुत ही सुन्दर तथा सुसम्पन्न भाषा है, स्पेनिश भाषा को जिसका भले ही आज अधिक महत्व न हो किन्तु आगे चलकर दक्षिण अमरीका का विकास होने पर उसका महत्व बहुत बढ़ जाने वाला है। फ्रेंच भाषा को जो हमेशा एक महत्वपूर्ण भाषा रही है और आज भी है, जर्मन भाषा को इत्यादि। मुझे आशा है कि हम इन सभी भाषाओं को सीखेंगे। किन्तु यह एक तथ्य है कि सुविधा की दृष्टि से तथा कार्य साधन की दृष्टि से भी अंग्रेजी का हमारे लिये सबसे अधिक महत्व है और हममें से बहुत से लोग उसे जानते भी हैं। यह एक अनर्गल बात होती कि हम जो कुछ जानते हैं उसे भूलने का प्रयास करें अथवा हमने जो कुछ सीखा है उससे हम लाभ न उठायें। किन्तु उसका अवश्य ही गौण स्थान होगा और उसे थोड़े से लोग ही सीखेंगे।

श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर ने सभा के सामने जो प्रस्ताव रखा है उसे इन सब बातों को ध्यान में रखकर रचा गया है। मैं कह नहीं सकता कि इस भाषा का भविष्य कैसा रहेगा। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि हम हिन्दी भाषा को समझदारी से प्रयोग करें, अर्थात् दो प्रकार उसे समझदारी से प्रयोग करें, और उसे ग्रहण करने वाली न कि बहिष्कार करने वाली भाषा बनायें, और उसमें भारत के सभी भाषा तत्वों को सम्मिलित करें, क्योंकि उन्हीं के कारण वह बनी है, और उसमें कुछ पुट उर्दू का अथवा हिन्दुस्तानी का भी रखें—स्मरण रहे विधि द्वारा नहीं बल्कि साधारण विकास द्वारा—और, मैं कहूंगा उसे उन लोगों पर जबरदस्ती नहीं थोपें जो उसे नहीं चाहते हैं तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि उसका विकास होगा और वह एक महान भाषा हो जायेगी। मैं कह नहीं सकता कि वह अंग्रेजी का स्थान कहां तक ले लेगी किन्तु यदि हमारे साधारण कार्य से वह अंग्रेजी को बिल्कुल ही बाहर भी निकाल दें तो फिर भी संसार से सम्पर्क बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत के व्यवहार के लिये हमारे लिये अंग्रेजी का महत्व रहेगा।

अब मैं फिर इस प्रश्न के संबंध में जो आधारभूत दृष्टिकोण है उसके बारे में बोलूंगा। क्या आपका दृष्टिकोण जनतंत्रात्मक होने जा रहा है अथवा प्रभुत्वमूलक? मैं यह प्रश्न हिन्दी के प्रेमियों से पूछता हूं क्योंकि यहां तथा अन्यत्र मैंने जो भाषण सुने हैं उनमें से कुछ की यह ध्वनि थी कि हिन्दी भाषी प्रदेश ही सभी बातों के लिये भारत का केन्द्र रहा है और अन्य प्रदेश तो भारत के सीमावर्ती प्रदेश रहे हैं। यह दृष्टिकोण गलत ही नहीं खतरनाक भी है। यदि आप इस प्रश्न पर समझदारी से विचार करें तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि यह दृष्टिकोण जितना हानिकर हो सकता है उतना अन्य कोई दृष्टिकोण नहीं। यदि लोग अथवा लोगों का कोई वर्ग किसी भाषा का विरोध करे तो आप उसे जबरदस्ती उनके गले के नीचे नहीं उतार सकते। आपको इसमें सफलता नहीं मिल सकती। आप जानते हैं कि सम्भव है कोई विदेशी विजेता तलवार के बल से इस प्रकार का प्रयास करे किन्तु इतिहास इसका प्रमाण है कि उसे फिर भी कभी सफलता नहीं मिली। भारत के जनतंत्रात्मक वातावरण में तो इसकी सम्भावना ही नहीं है। आपको भारत के उन विभिन्न प्रान्तों तथा समूहों का सद्भाव प्राप्त करना है जिनकी मातृ-भाषा

हिन्दी नहीं है। आपको उन लोगों की भी सद्भावना प्राप्त करनी है जो किसी अन्य रूप में हिन्दी को अर्थात् उर्दू या हिन्दुस्तानी को, बोलते हैं। चाहे आप जीतें या न जीतें किन्तु यदि आप कोई ऐसा प्रयास करेंगे जो अन्य लोगों को प्रभुत्व स्थापित करने अथवा जबरदस्ती किसी चीज को स्वीकार कराने के लिए किया हुआ प्रयास प्रतीत होगा तो आपका वह प्रयास निष्फल रहेगा।

अब मैं एक दो शब्द हिन्दुस्तानी, उर्दू और हिन्दी के बारे में कहना चाहता हूं। इस संशोधन में हमने 'हिन्दी' शब्द को स्वीकार किया है। मुझे 'हिन्दी' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है। मुझे वह पसंद है। मुझे इस संबंध में थोड़ा सा भय था कि अन्य लोगों को सम्भव है इसके सीमित अर्थ का ही बोध हो। मुझे इसका भय था। किन्तु मैंने यह विचार किया कि जिस प्रकार "हिन्दी" शब्द को मैं पसन्द करता हूं उसी प्रकार अन्य लोग भी पसन्द करेंगे। मैं जानता हूं, यहां उपस्थित कई माननीय सदस्य जानते हैं, तथा संयुक्त प्रान्त के प्रतिनिधि जानते हैं, कि वे बड़ी आसानी से उस भाषा को बोल सकते हैं जो उर्दू कही जाती है और उतनी ही आसानी से उस भाषा को बोल सकते हैं जो बहुत कुछ शुद्ध हिन्दी कही जा सकती है। वे दोनों भाषायें बोल सकते हैं। यह ठीक ही है कि हम दोनों भाषाओं को जानें ओर उनमें दिलचस्पी रखें। इसका परिणाम यह है कि उनकी शब्दावली बहुत ही सुसम्पन्न तथा सुन्दर है। मैं कह नहीं सकता कि आपका भी यही अनुभव है या नहीं। हम यह देखते हैं कि कुछ विषयों के संबंध में हम अपने विचार हिन्दी में अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त कर सकते हैं और कुछ विषयों में उर्दू में अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त कर सकते हैं। किन्हीं विषयों के लिये वह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं इन दोनों माध्यमों को चाहता हूं क्योंकि इनसे हिन्दी, जो देश की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा होने जा रही है, सशक्त होगी। हमें लोगों से सम्पर्क बनाये रखना चाहिये। यह एक अच्छी बात है। यदि आप यह करेंगे तो आप अन्य सभी मार्गों को भी खुला रखेंगे। भाषा का विकास इसी प्रकार होता है। यदि किसी व्यक्ति से दबाव पड़ने का भाव न रहे और यह भी भाव न रहे कि जबरदस्ती की जा रही है तो भाषा करोड़ों लोगों के हृदयों में स्थान पा जाती है। लोग धीरे-धीरे उसे ढालते हैं और एक रूप देते हैं।

अंकों के प्रश्न को ही लीजिये। मैं आपसे साफ बातें कहूंगा। मैंने इस प्रश्न पर पहले कभी विचार नहीं किया। किन्तु जब यह मेरे सामने आया और मैंने इस पर विचार किया तो मुझे तुरंत विश्वास हो गया कि इन अंकों को अपनाना ही हितकर है। इन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई और इन्होंने एकरूप धारण किया और अब ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में प्रयोग में आते हैं। मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया कि इन्हीं को अपनाना हितकर है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी अंकों का निषेध नहीं किया गया है। कोई भी व्यक्ति उन्हें जब चाहे तब प्रयोग कर सकता है। किन्तु राजकीय कार्य में, जिसमें बैंक संबंधी, लेखा-परीक्षा संबंधी तथा जन-गणना संबंधी आंकड़े काम में आते हैं तथा आंकड़ों के खाने बनाने होते हैं, इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग में लाने से लाभ होगा और इससे और लाभ भी होंगे। इन अंकों से आपके तथा अन्य देशों के बीच कम से कम

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

एक दीवार हट जाती है। इसका इस समय बहुत महत्व है क्योंकि विज्ञान के विकास में तथा विज्ञान को व्यवहार में लाने में अंकों का बहुत महत्व है। मैं यह कह चुका हूं कि आप हिन्दी अंकों को भी प्रयोग कर सकते हैं। जो कोई हिन्दी अंकों को सीखेगा वह उन्हें पढ़ भी सकेगा और जब चाहे लिख भी सकेगा। किन्तु यदि आप इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को राजकीय प्रयोजनों तक ही सीमित करने की बात सोचें तो मैं यह बता चुका हूं कि आप कठिनाई में पड़ जायेंगे।

आपको इस पर आपत्ति ही क्या है? क्या आप यह चाहते हैं कि भारत आधुनिक विज्ञान तथा कला में प्रगति करे। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं यदि हम इन प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग नहीं करेंगे तो हम पिछड़ जायेंगे। हम बच्चों के तथा युवाओं के मस्तिष्कों पर बहुत भार डालेंगे और हमारे दफ्तरों में तथा अन्यत्र हमारा काम बहुत बढ़ जायेगा और उस काम का संसार से कोई संबंध नहीं रह जायेगा। इसलिये व्यावहारिक दृष्टि से तथा भावनाओं की दृष्टि से भी इन्हीं अंकों को स्वीकार करना उचित होगा। इसके अतिरिक्त हम किसी विदेशी चीज को नहीं स्वीकार कर रहे हैं, हम अपनी ही चीज को स्वीकार कर रहे हैं, भले ही उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन हो गया हो। इसके अतिरिक्त छपाई में भी इनके कारण हमें सुविधा होती है। सम्भवत: यहां कई माननीय सदस्यों का पत्रों से तथा मुद्रण से संबंध है। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या इन अंकों को हिन्दी अंकों की अपेक्षा अधिक आसानी से कम्पोज नहीं किया जा सकता है और छापा नहीं जा सकता है?

मेरा निवेदन है कि चूंकि हम अंकों के प्रश्न पर आकर रुक गये हैं इसलिये इसका इस आधारभूत दृष्टि से महत्व है कि आखिर हम किस ओर देख रहे हैं। जहां तक मेरा संबंध है मैं हिन्दी अंकों को जानता हूं और मैं उन्हें आसानी से लिख भी सकता हूं और पढ़ भी सकता हूं इसलिये मुझे स्वयं कोई कठिनाई नहीं है। किन्तु जिस प्रकार यहां तथा अन्यत्र यह विवाद खड़ा किया गया है और इस प्रकार का तर्क-वितर्क किया गया है, उसे देखते हुये मेरे हृदय में यही विचार उठा कि इस विवाद के पीछे एक भिन्न ही विचारधारा है। यह विचारधारा विज्ञान को तथा विज्ञान और आधुनिक संसार जिन बातों के प्रतीक हैं उनको प्राचीन दृष्टि से देखने की है। यह पीछे देखना ही है। यह विचारधारा, मेरे विचार से, भारत के लिये घातक है। जिस महान राष्ट्र का हमने स्वप्न देखा है, और जिसके लिये हमने श्रम किया है, उस लक्ष्य तक यह विचारधारा हमें नहीं पहुंचने देगी।

हम एक नवीन युग के द्वार पर खड़े हैं। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि हमारी दृष्टि के सामने भारत का यह चित्र स्पष्ट हो। हम किस प्रकार का भारत चाहते हैं? क्या हम एक ऐसा आधुनिक भारत चाहते हैं जिसकी जड़ें उस अतीत में सुस्थिर हों जिससे हमें प्रेरणा मिलती है जिस आधुनिक भारत में आधुनिक विज्ञान तथा आर्थिक संसार की सभी बातों के लिये स्थान हो, अथवा क्या हम किसी ऐसे प्राचीन युग का आविर्भाव चाहते हैं जिसका वर्तमान युग से कोई भी

संबंध न हो? आपको इन दो दृष्टिकोणों में से किसी एक को अपनाना है। यह प्रश्न दृष्टिकोण का है। आपको इसका निर्णय करना है कि आप पीछे की ओर देखते रहेंगे अथवा आगे की ओर देखेंगे।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): हम अभी तथा एक बजे विसर्जित होने के पूर्व इस सभा के बहुत प्रतिष्ठित तथा माननीय सदस्यों के भाषण सुन चुके हैं। कभी अपने इतने प्रतिष्ठित देशवासियों का विरोध करने में कष्ट होता है किन्तु राष्ट्रों के इतिहास में कई अवसर ऐसे भी आते हैं जब अपनी बात कहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता। मैं केवल विरोध की लालसा से विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं इस ऐतिहासिक अवसर पर उन विचारों को व्यक्त करने के लिये उठा हूं जो मेरे अपने विचार हैं।

इस प्रश्न के संबंध में दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण उन लोगों का है जो इस देश में अंग्रेजी भाषा को जब तक हो सके, और जहां तक हो सके बनाये रखना चाहते हैं, और दूसरा दृष्टिकोण उन लोगों का है जो यथाशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसके संबंध में हमारे यही दो दृष्टिकोण हैं। मैंने जितने भी संशोधनों की सूचना दी है वह दूसरे दृष्टिकोण से दी है। यदि मैं यह देखता कि अध्याय 14-क के सभी अनुच्छेद इसी ढंग के हैं कि उनसे हमारे उद्देश्य की हानि नहीं हो सकती तो मैं यहां बोलने के लिये कभी नहीं आता। यह ठीक है कि हमने हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि को एक उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। अंकों के संबंध में मैं बाद में बोलूंगा।

इस संबंध में इतना कहकर अब मैं इस अध्याय के व्यावहारिक अंश को उठाता हूं, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति किस उपाय से तथा किस प्रकार करेंगे। हिन्दी भाषा इस देश की राष्ट्र-भाषा तथा राजभाषा होने जा रही है और देवनागरी लिपि उस भाषा की लिपि होने जा रही है। इतना स्वीकार करने पर क्या हमारे लिये यह उचित नहीं है कि हम इस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए उपाय तथा साधन ढूंढ़ निकालें? यदि हम इस अध्याय के विभिन्न भागों को देखें तो हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि उद्देश्य यह कदापि नहीं है। इस अध्याय में जो बांध रखे गये हैं उन्हें देखते हुये उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि हिन्दी को यथाशीघ्र न आने दिया जाये। यदि इन बांधों को पार नहीं किया गया, अथवा इन्हें तोड़ा नहीं गया, और हिन्दी को अपनाने के लिये मार्ग प्रशास्त नहीं किया गया, तो हमें बहुत बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जब हम इसके अध्याय के उस स्थल पर पहुंचते हैं जहां आयोग और समिति का वर्णन किया गया है, तो हमें बहुत कुछ इस आशय का एक उपबन्ध मिलता है कि पांच वर्ष तक केन्द्र में तथा प्रान्तों में आपकी राज-भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। इसके अतिरिक्त इस अध्याय के अन्य भागों में और रुकावटें भी रखी गई हैं। आप यह देखेंगे कि प्रान्तों में हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में लाना आपके लिये कठिन हो जायेगा।

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

इस सभा के कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि इस प्रश्न का उनके दृष्टिकोण से देखा जाये। प्रान्तों में हम लोगों के लिये कठिनाई है। हम अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को कैसे देंगे? हमारे सामने प्रश्न यह है। चाहे केन्द्र में कुछ भी क्यों न किया जाये हमें प्रान्तों में इस कार्य को सम्पन्न करना ही है। हमारे सामने बहुत बड़ी कठिनाइयां हैं; अब हमने शासन की बागडोर सम्हाली तो हमने ऐसे विभागों को स्थापित करने का प्रयास किया जो हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में ला सकें। अपने प्रान्त में मैंने एक लोक-भाषा-प्रसार विभाग स्थापित किया है। अर्थात् हमने ऐसे लोगों को नियुक्त किया है जो पुस्तकों का अनुवाद करेंगे। चौबीस हजार शब्दों का एक संग्रह तैयार किया गया है। ये शिल्प-संबंधी शब्द हैं और इनकी सभी वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये आवश्यकता पड़ेगी। हमने हिन्दी और मराठी में वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद करवाया है। इन दो भाषाओं को हमारे यहां इंटरमिडिएट कक्षाओं तक स्वीकार किया गया है और भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र की बी.ए. तक की पुस्तकों का हिन्दी तथा मराठी में अनुवाद कराने के लिये सामग्री एकत्रित की गई है। सब सामग्री तैयार है किन्तु यहां जिस अनुच्छेद का प्रस्ताव रखा गया है उसके कारण उसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे प्रान्त में दो विश्वविद्यालय हैं। उनमें से एक ने यह निर्णय किया है कि इस वर्ष से अथवा अगले वर्ष से कालेजों में शिक्षा मराठी और हिन्दी में दी जायेगी। दूसरे ने यह निर्णय किया है कि वह हिन्दी को 1952 से शिक्षा का माध्यम बनायेगा। हमारे प्रान्त में अब अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाती। 1946 से हमारे हाई स्कूलों में हिन्दी और मराठी के माध्यमों से शिक्षा दी जा रही है। ये दोनों भाषाएं हमारे प्रान्त की स्वीकृत भाषाएं हैं। यदि किन्हीं स्कूलों में अथवा हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बंगला अथवा उर्दू है, अथवा अन्य कोई भाषा है, तो उन्हें हम अनुदान देते हैं। इसलिये तीन वर्ष पश्चात्, जब हमारे प्रान्त के विश्वविद्यालयों से स्नातक शिक्षा समाप्त करके बाहर आयेंगे तो वे अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ होंगे और इस कारण राष्ट्र को उनकी आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रकार हमारा प्रान्त एक संकटपूर्ण स्थिति में पड़ जायेगा।

मेरे विचार से यह हमारा कर्तव्य है कि हम संविधान में इस प्रकार के उपबन्ध रखें कि उनके फलस्वरूप हम अधिक से अधिक उन्नति कर सकें। मेरा निवेदन है कि प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे जैसे भी चाहें अपना विकास करें और इस अनुच्छेद में कल्पित स्तर तक पहुंचे जिसमें यह उपबंधित है कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी राष्ट्र-भाषा अथवा राज-भाष होगी।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): क्या आप यह कह सकते हैं कि प्रान्तों को स्वतंत्रता नहीं है? प्रान्तों को इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे जो भी विधि बनाना चाहें, बनायें *(विघ्न)*।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** यदि आप उपबंधों को सावधानी से पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि यह बात नहीं है, मूल संशोधन संख्या 65 में कहा गया है,

"अनुच्छेद 301-घ तथा 301-ङ के अधीन रहते हुए कोई राज्य किसी भाषा को अंगीकर कर सकेगा....." यदि आप अनुच्छेद 301-घ तथा अनुच्छेद 301-ङ को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि कौन से परिसीमन रखे गये हैं। अनुच्छेद 301-घ में कहा गया है—"संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राज-भाषा होगी।" आगे यह कहा गया है "परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राज-भाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।" जहां तक इस भाग का संबंध है इसकी शब्दावली मूल मसौदे की शब्दावली से अच्छी है किन्तु जहां तक किसी राज्य की राज-भाषा से संबंध है वह अनुच्छेद 301-घ से शासित होती है। उस प्रयोजन के लिये राज-भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा एक राज्य और संघ के बीच संचार के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा होगी। सभी प्रयोजनों के लिये आपको अंग्रेजी भाषा ही प्रयोग करनी होगी। इस संबंध में उपबन्ध रखा गया है कि जहां दोनों राज्य हिन्दी भाषा का प्रयोग करने के लिए सहमत हों वहां वह प्रयोग की जा सकती है। किन्तु जहां तक अन्य राज्यों का संबंध है, और एक राज्य का दूसरे राज्य से संचार का संबंध है और उस राज्य का संघ से संचार का संबंध है, केवल अंग्रेजी भाषा ही प्रयोग की जा सकेगी। इसीलिये मैं यह कर रहा हूं कि हमारा भाषा-स्वातंत्र्य सीमित हो रहा है। जहां तक वह सीमित होता है वहां तक मुझे इस उपबन्ध पर आपत्ति है।

इस मसौदे में मैं सबसे खतरनाक उपबन्ध इसे समझता हूं कि न्यायालयों में तथा उच्च न्यायालयों में, विशेषतः प्रान्तों में अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जायेगी। जब तक न्यायालयों की भाषा नहीं बदली जाती है.....

***एक माननीय सदस्यः** उच्च न्यायालयों के संबंध में।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** जी हां, उच्च न्यायालयों के संबंध में जो कुछ भी आशा नहीं है। जहां तक अधीन न्यायालयों का संबंध है, हिन्दी और मराठी को प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि उनको न्यायालयों की भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु होता यह है और यह आज भी हो रहा है कि, यद्यपि हम अपने दावे तथा बयान हिन्दी या मराठी में दे सकते हैं किन्तु न्यायाधीश पूरी गवाही अंग्रेजी में लिखते हैं और अपना निर्णय भी अंग्रेजी में सुनाते हैं। इसलिये लगभग सभी कामों के लिये अंग्रेजी भी प्रयोग की जा रही है। जब तक हमें ऐसे लोग नहीं मिलते, जो इन लोगों की जगह ले सकें, तब तक हमारे लिये अपने प्रान्त में हिन्दी को अंगीकार करना कठिन है।

इसलिये मैं सभी उपबन्धों पर इस दृष्टि से विचार कर रहा हूं। हमें सभी विभागों में तथा सभी स्तरों में हिन्दी को यथाशीघ्र प्रयोग में लाने में समर्थ होना चाहिये। इसी दृष्टि से मेरा यह निवेदन है कि जो निर्बन्धन रखे गये हैं उन्हें हटा देना चाहिये। जहां तक केन्द्र का संबंध है, उसके लिये उपबन्ध रख दिये गये हैं और उसके मार्ग में कोई रुकावटें नहीं हैं। एक अनुच्छेद में यह उपबन्ध

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

है कि जहां तक राज्यों का संबंध है, उन्हें अपने सभी अधिनियम, विधेयक, नियम तथा उपविधियां आदि सभी संघ की भाषा में बनानी होंगी। अर्थात् जब तक अंग्रेजी भाषा है तब तक ये सब चीजें अंग्रेजी में ही बनेंगी। मेरा निवेदन है कि इस संबंध में प्रान्तों को स्वतंत्रता होनी चाहिये। संघ के संबंध में संसद निर्णय कर सकती है किन्तु यदि राज्यों के विधान-मंडल यह निर्णय करना चाहें कि ये चीजें राज्य की भाषा में बनानी चाहिये तो उन्हें इस प्रकार का निर्णय करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध रखा है कि विधान-मंडल जिन विधेयकों तथा अन्य चीजों को पारित करें, उन्हें राज्य की भाषा में पारित करे। किन्तु उनके साथ पाठ का एक अधिकृत अनुवाद भी होना चाहिये।

जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं उसी के समान एक उदाहरण की ओर मैं सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं। संसार के इतिहास में इसके समान केवल एक उदाहरण मिलता है। वह उदाहरण आयरलैंड का है। 1921 में ब्रिटिश सरकार के साथ संधि करने के पश्चात् आयरिश लोगों ने अपने संविधान में सबसे पहले यह रखा कि आयरिश भाषा राष्ट्र-भाषा होगी और साथ ही उन्होंने यह भी रखा कि उनकी दूसरी भाषा अंग्रेजी होगी। मैं बताऊंगा कि यह किन कारणों से किया गया। आयरलैंड में जब तक अंग्रेज शासन करते रहे तब तक उन्होंने आयरिश भाषा के सीखने तथा प्रयोग करने पर प्रतिषेध रखा, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक कक्षाओं से लेकर कालेज की कक्षाओं तक अंग्रेजी भाषा ही सिखाई जाती थी और एक शताब्दी तक अर्थात् 19वीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अन्त तक, आयरिश भाषा का उस देश से लोप ही हो गया। इस काल में आयरलैंड का प्रत्येक निवासी केवल अंग्रेजी ही बोलता था। जब 1910 में जनगणना हुई तो यह ज्ञात हुआ कि उस छोटे से द्वीप की तीस चालीस लाख की जनसंख्या में से केवल 21,000 लोग आयरिश भाषा जानते थे। 1921 की संधि के पश्चात् उन्होंने अपने संविधान में सबसे पहला उपबन्ध यह रखा कि आयरिश भाषा उस देश की राष्ट्र-भाषा होगी और यह उपबन्ध उन आयरलैंड निवासियों ने रखा जो उस समय आयरिश भाषा को नहीं जानते थे। केवल 21,000 लोग आयरिश भाषा जानते थे और अवशिष्ट लोगों में अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेजियत थी। इन लोगों ने तुरंत ही यह निर्णय किया कि आयरलैंड की राष्ट्र-भाषा आयरिश होगी।

***एक माननीय सदस्य:** इसका परिणाम क्या हुआ?

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** उन्होंने यह केवल कार्यसाधन की दृष्टि से किया। चूंकि उनके लिये अंग्रेजी का बिल्कुल ही परित्याग करना सम्भव नहीं था इसलिये उन्हें उसे दूसरी भाषा के रूप में स्वीकार करना पड़ा, किन्तु विधेयकों के संबंध में यह उपबन्ध रखा गया कि वे उस देश की भाषा, अर्थात् आयरिश, में ही उपस्थित किये जायें। साथ ही उसका अंग्रेजी में अनुवाद अथवा प्रतिरूप भी तैयार किया जाता था। यदि इन दोनों में कहीं भेद होता था तो आयरिश के पाठ को प्रामाणिक तथा अधिकृत समझा जाता था। इसलिये अपने संशोधन में मैंने

इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि हमें राज्य की भाषा में, चाहे वह हिन्दी हो या मराठी, विधि निर्माण की स्वतंत्रता होनी चाहिये और मूल मसौदे के साथ, जिसे हम विधि का रूप देंगे, अंग्रेजी का एक प्रामाणिक पाठ भी होना चाहिये और यदि इन दोनों में विभेद हो तो जहां अंग्रेजी की आवश्यकता हो वहां अंग्रेजी का पाठ प्रामाणिक समझा जाना चाहिये। परन्तु सभी प्रयोजनों के लिये हिन्दी का अथवा राज्य की भाषा का पाठ ही प्रामाणिक समझा जाना चाहिये। मेरे विचार से इस संबंध में हमें स्वतंत्रता होनी चाहिये। इस प्रयोजन के लिये अपनी भाषा प्रयोग करने में प्रान्तों के लिये कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि हम हिन्दी चाहते हैं तो हमें उसे अपनाने दीजिये हमारी स्वतंत्रता को सीमित न करिये।

अंकों के संबंध में सारी सभा में कुछ समय से बहुत उत्तेजना फैली हुई है और पंडित जी जैसे व्यक्ति ने हमसे कहा है कि जहां तक इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का संबंध है उनकी कई प्रयोजनों के लिये आवश्यकता है, और उनमें से कुछ को उन्होंने बताया भी है। कुछ सदस्यों ने, जिनमें मैं भी सम्मिलित हूं, अनुभव किया है कि उनकी भी आवश्यकता है। इस कारण हमने इस आशय का एक संशोधन रखा है कि कुछ प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी के अंक ही काम में लाये जायें अर्थात् लेखा-परीक्षा, बैंक कार्य के और अन्य प्रकार के कारोबारों के कार्य के संबंध में, अथवा राजकीय कार्य के संबंध में, यदि उनकी आवश्यकता हो तो उन्हें काम में लाया जाये। यदि इस अध्याय, अर्थात् अध्याय 14-क के प्रस्तावक महोदय इसे स्वीकार करते हैं तो हमारी कठिनाइयां दूर हो जानी चाहियें। इन्हें भाषा के प्रश्न के साथ मिला कर भ्रम उत्पन्न न किया जाये। हम सभी जानते हैं कि उन्हें समझना कठिन नहीं है। हिन्दी के अंक हिन्दी भाषा के अंग के रूप में प्रयोग किये जायें और जिन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंकों की आवश्यकता हो उन्हें स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जाये। इस संबंध में कोई कठिनाई नहीं है और इसी दृष्टि से मैंने अपना संशोधन बनाया है। मैं यह कहता हूं कि वे उन प्रयोजनों के लिये काम में लाये जायें जिन प्रयोजनों के लिये राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश करे। इस प्रकार यदि आप अंग्रेजी अंकों को हिन्दी अंकों से पृथक् कर देते हैं तो कोई भ्रम नहीं रह जाता और मेरे विचार से यहां प्रत्येक व्यक्ति इसके लिये सहमत होगा। इससे इस समस्या का ही निराकरण हो जायेगा। किन्तु सभी यह समझ रहे हैं कि अंग्रेजी अंक राज-भाषा हिन्दी के अंग बनाये जा रहे हैं। इस सभा का यह उद्देश्य नहीं है। हम उन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी के अंकों को काम में ला सकते हैं जिनके लिये उनकी आवश्यकता हो—इस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है और जो प्रान्त अपनी भाषाओं में अंग्रेजी के अंक लिखते हैं उनसे भी हमारा कोई झगड़ा नहीं है। वे उन्हें बराबर काम में लायें, किन्तु यदि वे इस पर भी जोर दें कि संघ की राज-भाषा अर्थात् हिन्दी में भी अंग्रेजी अंक काम में लाये जायें तो उनकी इच्छा पूर्ति के लिए मैंने यह उपबन्ध रखा है कि यदि किसी राजकीय संचार और पत्र-व्यवहार में अंग्रेजी अंक काम में लाना आवश्यक हो तो अंग्रेजी अंकों को काम में लाकर इन प्रान्तों के साथ व्यवहार किया जाये किन्तु भारत के अन्य भागों पर, जहां उनकी आवश्यकता न हो, वे न थोपे जायें। जहां तक हिन्दी भाषी प्रान्तों का संबंध है, उनके साथ जो संचार हो उसमें केवल हिन्दी के अंक ही काम में लाये जायें किन्तु जहां तक उन भागों का संबंध है,

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

जहां कि भाषाओं में अंग्रेजी अंक काम में लाये जाते हैं, उनके साथ जिस हिन्दी में व्यवहार हो उसमें केवल अंग्रेजी के अंक ही काम में लाये जायें। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि इसका हमसे कोई संबंध नहीं है।

***एक माननीय सदस्य:** यदि कोई प्रान्त हिन्दी को नहीं अपनाना चाहे तो क्या आप उसे इसकी स्वतंत्रता देंगे?

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** यह अखिल-भारतीय संघ कह सकेगा कि आप उसे अपनाना चाहते हैं या नहीं। यदि आप यह कहते हैं कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी संघ की भाषा होगी और यदि केन्द्र संसद यह निर्णय करे कि आपसे हिन्दी में व्यवहार होगा, तो केन्द्र आपसे इसी भाषा में व्यवहार करेगा। जहां तक प्रान्तों के लोगों का संबंध है आपके और हमारे बीच में कोई बात नहीं है। आप केन्द्र से जो चाहें तय करें। हम कहते हैं, यदि आप चाहते हैं तो अंग्रेजी अंकों को अपनाइये, अथवा हिन्दी अंकों को अपनाइये और हममें से वे लोग जो दोनों अंकों को अपनाना चाहते हैं दोनों को अपनायें, किन्तु जहां तक हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों का संबंध है, जहां हिन्दी प्रान्तीय भाषा अथवा राज-भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है, उन्हें अंग्रेजी अंकों को स्वीकार करने के लिये विवश न किया जाये, जब तक कि यह प्रान्त स्वयं यह निर्णय न करें कि अंग्रेजी के अंकों को उनकी भाषा का अंग बना लिया जाये।

इसलिये मैंने अपने संशोधन में दो खंड इस आशय के रखे हैं कि जहां तक अंग्रेजी अंकों का संबंध है उन्हें इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। यदि मूल संशोधन के प्रस्तावक महोदय इस संशोधन को स्वीकार कर लें तो अंकों की समस्या हल हो जायेगी। इस समस्या को हल करने के बारे में सुझाव रखा गया है और इस संबंध में उत्तर-भारत तथा दक्षिण-भारत के बीच कोई कलह नहीं है। मैं सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस भाषा के प्रश्न पर उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत की स्थिति की दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिये। जब तक हिन्दी भाषा को केन्द्र अथवा संघ स्वीकार नहीं करेगा तब तक वह एक प्रान्तीय भाषा ही रहेगी। आप किसी भाषा को भी राष्ट्र-भाषा अथवा राज-भाषा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यदि आप चाहें तो वह हिन्दी हो सकती है, अथवा हिन्दुस्तानी हो सकती है, अथवा बंगला या मराठी हो सकती है, इन सभी भाषाओं के संबंध में प्रस्ताव रखे गये हैं, किन्तु जब एक बार आप किसी भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लें तो आप फिर उसे प्रान्तीय भाषा न कहें। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि जब आप किसी भाषा को संघ की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर देंगे तो वह आपकी तथा मेरी भाषा हो जायेगी और प्रान्तीय भाषा नहीं रह जायेगी। वह प्रान्तीय भाषा नहीं रह जायेगी और हमारा यह कर्तव्य हो जायेगा कि हम उसे अपनी पूरी शक्ति लगा कर सुसम्पन्न बनायें।

कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि एक ही अर्थ में कई शब्द प्रयोग किये जाते हैं। वे कहते हैं कि पंडित सुन्दर लाल अमुक शब्द प्रयोग करते हैं और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हमारे मित्र सेठ गोविन्द जी उसी चीज के लिये दूसरा शब्द प्रयोग करते हैं, इत्यादि। शब्दों का कहीं अन्त नहीं है। यदि आप किसी

भाषा के शब्द-कोष को देखें तो आपको बहुत से शब्द ऐसे मिलेंगे जो समानार्थक होंगे और आपको इसकी स्वतंत्रता है कि आप जिस शब्द को भी चाहें प्रयोग करें। संस्कृत में भी अमर-कोष है, जिसमें अनेक शब्दों के पर्याय हैं। इसी प्रकार एक संस्कृत का शब्द, एक हिन्दी का शब्द, एक फारसी का शब्द और एक बंगला का शब्द समानार्थक हो सकते हैं। ये सभी शब्द एक ही भाषा के भी हो सकते हैं और जब ये कोष में रख दिये जायेंगे तो इन्हें हर कोई प्रयोग कर सकेगा।

इसलिये मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप विचार न करें कि हम इस भाषा को किसी पर थोप रहे हैं। सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह जिस भाषा को भी चाहे स्वीकार करे। जब आप किसी भाषा को स्वीकार कर लें तो यह न समझें कि वह आप पर थोपी गई है। उस भाषा को आपने अपनी भाषा बनाया है और वह उतनी ही आपकी भाषा है जितनी कि वह मेरी है। इसके पश्चात् कोई प्रश्न ही नहीं उठता और कोई विवाद ही नहीं खड़ा होता। यह बताया जा चुका है, और मुझे इस संबंध में विश्वास है, कि यह सभा देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी को संघ की भाषा के रूप में स्वीकार करेगी। संघ जिन प्रयोजनों के लिये भी आवश्यक समझे अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग करे, और हिन्दी भाषा से उनका कोई संबंध न रहे, किन्तु यदि कुछ प्रान्तों को संतुष्ट करने की आवश्यकता समझी जाये तो संघ उनके प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंकों को प्रयोग करें। किन्तु भारत के अन्य भागों में, जहां की भाषा हिन्दी ही है और जहां इन अंकों की आवश्यकता नहीं है विशुद्ध हिन्दी ही चलन में रहे और उसका अंग्रेजी अंकों से कोई संबंध न रहे।

हमने पन्द्रह वर्ष की काल सीमा निश्चित की है। मैं दक्षिण भारत के अपने मित्रों से कहूंगा कि यदि वे यथाशीघ्र हिन्दी सीख लेंगे तो इससे उनका ही हित साधन होगा, क्योंकि यदि वे शीघ्र हिन्दी नहीं सीखेंगे तो वे पीछे रह जायेंगे। मैं यह साफ कहना चाहता हूं कि जहां तक मेरे दक्षिण भारत के मित्रों का संबंध है, वे बहुत बुद्धिमान हैं। वे बहुत पुरुषार्थी भी हैं और मैंने यह देखा है कि मेरे प्रान्त में कई विभागों में हमारे मद्रासी मित्र कार्य कर रहे हैं और वे उतनी ही योग्यता से कार्य कर रहे हैं जितनी योग्यता से वे लोग कर रहे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और कहीं तो उनसे भी अधिक योग्यता से कार्य कर रहे हैं। स्थिति यह है। बहुत काल तक प्रशासक रहने के कारण मुझे जो अनुभव हुआ है उसके आधार पर मैं यह कह रहा हूं और मेरे विचार से मैं जिम्मेदारी के साथ बोल सकता हूं। मेरे प्रान्त में उनमें से बहुत से लोग हैं। यहां एक मित्र हैं जो एक समय हमारी प्रान्तीय सेवा में थे। वे हिन्दी तथा संस्कृत भी उतनी ही अच्छी तरह बोल सकते हैं जितनी अच्छी तरह अन्य कोई व्यक्ति। हमारे यहां मद्रासी असैनिक अधिकारी हैं, मद्रासी प्रान्तीय अधिकारी हैं और मैं आपको बताना चाहता हूं कि हमारे यहां एक विभाग ऐसा है जिसका काम सभी जगहों में हिन्दी में ही होता है, भले ही वह मराठी-भाषी जिला हो अथवा हिन्दी-भाषी जिला। उस विभाग में मराठी-भाषी लोग, तेलगू-भाषी लोग, पंजाबी, बंगाली तथा सभी प्रकार

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

के लोग हैं और साधारण कर्मचारियों से लेकर अधिकारियों तक सभी लोग उस विभाग में पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रहे हैं। यह विभाग आरक्षी विभाग है। ये विभिन्न प्रदेशों के रहने वाले कर्मचारी तथा अधिकारी योग्यता से कार्य करते हैं और हिन्दी भाषा में ही विभाग का कार्य करते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि यहां हमारे मित्रों को हिन्दी सीखने से इतना भय क्यों है।

***एक माननीय सदस्यः** हमें कोई भय नहीं है।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** उनके संकोच का कारण यह है कि उन्हें यह भय है कि उनके लिये रुकावटें पैदा कर दी जायेंगी। इसीलिये मैं यह कहता हूं कि आपका, हमारा तथा देश का हितसाधन इसी में है कि आप यथाशीघ्र हिन्दी सीखें क्योंकि तब आपके सामने कोई कठिनाई नहीं रह जायेगी और जिस प्रकार इतने काल तक आप हमारा साथ देते आये हैं उसी प्रकार हमारा साथ देते रहेंगे। आप कभी यह विचार न करें कि हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में लाने से हम किसी प्रकार की रुकावट पैदा करना चाहते हैं।

यहां मैं एक पुस्तिका लाया हूं, जिसे मुझे मेरे एक मित्र ने दिया है जो इस सभा के सदस्य हैं और उसमें कहा गया है कि बंगाल के महान समाज-सुधारक केशव चन्द्र सेन ने 1974 में एक लेख लिखा था, जो बंगाल के साप्ताहिक "सुलभ समाचार" में प्रकाशित हुआ था। उसमें यह प्रश्न पूछा गया था कि यदि एक भारतीय भाषा से भारत में एकता स्थापित नहीं की जा सकती तो उसे स्थापित करने का उपाय ही क्या है? एकमात्र उपाय यह है कि सारे भारत में एक ही भाषा प्रयोग की जाये। इस समय भारत में जो भाषाएं प्रचलित हैं उनमें से बहुत सी भाषाओं में हिन्दी का अंश है और हिन्दी लगभग सभी जगह प्रचलित है यदि हिन्दी को ही सारे भारत की भाषा बनाई जाये तो यह प्रश्न आसानी से हल हो सकता हैं मैं यह बताना चाहता हूं कि यह लेख बंगला में लिखा गया था और मैंने उस का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद पढ़ कर सुनाया है। यह लेख 1874 में लिखा गया था। इसमें एक प्रकार की भविष्यवाणी की गई थी क्योंकि आज हम इसी विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं।

हिन्दुस्तानी, अथवा संस्कृत, अथवा किसी अन्य भाषा का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी के संबंध में मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस अध्याय के निर्माताओं ने यह अनुभव किया है कि हिन्दुस्तानी हिन्दी भाषा की एक शैली मात्र है। वास्तव में जो परिशिष्ट दिया गया है उसमें हिन्दुस्तानी का उल्लेख नहीं है। निदेश संबंधी खण्ड में हिन्दुस्तानी का एक रूप और शैली के नाम से उल्लेख किया गया है। इस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। हम उसे बड़ी खुशी से स्वीकार करेंगे तथा प्रयोग करेंगे। यह कहा जा चुका है कि कोई भाषा किसी संविधान को पारित करने से नहीं बनती। किसी भाषा के प्रेमी ही उसका निर्माण करते है। उसे हम यहां नहीं बना सकेंगे। इस सभा के बाहर जो लोग हैं वे ही उसे बनायेंगे, चाहे हम किसी प्रकार का संविधान क्यों न बनायें।

इसलिये मेरा निवेदन है कि इन चार कारणों से मेरे संशोधन स्वीकार कर लिये जायें। पहला कारण यह है कि इनसे भाषा का प्रश्न हल हो जाता है और दूसरा कारण यह है कि इनसे अंकों का प्रश्न भी हल हो जाता है। प्रान्तों को अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करने दिया जाये और "यदि", "परन्तु", "इसके अथवा उसके अधीन रहते हुए" शब्दों को रखकर उनके मार्ग में बाधा न डाली जाये। इन "यदि", "परन्तु" जैसे शब्दों को तथा परन्तुकों को निकाल दिया जाये और हमें अपना विकास करने की स्वतंत्रता दी जाये। हम आपको यह कर दिखायेंगे कि हमारे प्रान्त में दक्षिण भारत के हमारे मित्र पांच वर्ष में अन्य लोगों के समान ही हिन्दी आसानी से सीख जायेंगे। मेरे पास सामग्री है और अपने प्रान्त में मैंने जो विभाग खोला है उसमें मद्रासी मित्र भी काम कर रहे हैं। इसलिये मेरा निवेदन है कि उच्च न्यायालयों में भी राज-भाषा ही प्रयोग की जाये और यदि अन्यत्र अंग्रेजी भी प्रयोग की जाये तो हम अपने विधान-मंडल में अपने विधेयकों को अपनी इच्छानुसार राज-भाषा में ही पारित करने दिया जाये। इन चार कारणों से मैंने अपने संशोधन उपस्थित किये है और मुझे आशा है कि सभा उन्हें स्वीकार कर लेगी।

जहां तक अंकों का संबंध है, लेखों के विषय में समझौते की दृष्टि से मैंने और कोई चारा न देख कर यह स्वीकार किया है कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् भी विशेष प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंक काम में लाये जा सकते हैं। किन्तु मेरे प्रारम्भिक संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 301-क का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।

हममें से वे लोग जो इस सभा के सदस्य हैं, तथा कांग्रेस के भी सदस्य हैं, कांग्रेस का अनुसरण करते आये हैं, कांग्रेस ने पन्द्रह वर्ष की अंतिम अवधि निश्चित की है और कहा है कि उसे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमें इस पर विचार नहीं करना चाहिये कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् क्या होगा। आने वाली पीढ़ियों के लिये उपबन्ध रखकर हम उन्हें बन्धन में नहीं डालना चाहिये। पन्द्रह वर्ष के पश्चात् हमारे जो प्रतिनिधि आयेंगे वे इसका निर्णय कर लेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिये। जहां तक हमारा संबंध है हम पन्द्रह वर्ष की अवधि निश्चित करते हैं। कांग्रेस ने यह आज्ञा दी है कि उत्तरोत्तर हिन्दी प्रयोग की जाये। मैंने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। पन्द्रह वर्ष में ही हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं। मेरा यह प्रस्ताव है कि दस वर्ष में हम आयोगों और समितियों का कार्य समाप्त कर दें। संसद इस संबंध में निर्णय करेगी कि किन उपायों तथा साधनों से हिन्दी को अधिक से अधिक पन्द्रह वर्ष में स्वीकार किया जा सकता है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव की भाषा के अनुरूप ही मैंने अपने संशोधनों की भाषा भी रखी है और मुझे आशा है कि यह सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): क्या कांग्रेस ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है कि हिन्दुस्तानी राज-भाषा होगी?

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** जहां तक कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव का संबंध है मेरे विचार से उसमें हिन्दुस्तानी शब्द प्रयोग नहीं किया गया है। उसमें

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

कहा गया है कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी राज-भाषा होगी। यदि किसी सदस्य महोदय के पास वह प्रस्ताव हो तो वे उसे माननीय सदस्य महोदय को दे दें।

***श्री राम सहाय** (संयुक्तराज्य, ग्वालियर और इंदौर): अध्यक्ष महोदय, श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव रखा है, उसका मैं समर्थन करते हुए सिर्फ इतना निवेदन करूंगा कि इसमें जो तीसरा चैप्टर है, मैं नहीं समझ सका कि उसके रखने की क्या अहमियत है, और उसकी क्यों जरूरत महसूस की गई। जब आफिशियल लैंग्वेज हिन्दी और देवनागरी स्कृष्ट मान ली गई है। साथ ही उसके जब उसे रिप्लेस करने के लिये 15 बरस की मियाद रखी गई है तो सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट्स के लिये किसी दूसरे तरीके पर अलहदा चैप्टर रखने और विचार करने की क्या आवश्यकता है। मैंने सिर्फ इसी वजह से इस प्रस्ताव में तीन अमेंडमेंट पेश किये हैं, जिसमें पहले का मतलब यह है कि तीसरे चैप्टर को अलग कर दिया जाये, दूसरे का तात्पर्य यह है कि जैसाकि धारा 301 (ए) में 15 साल की मियाद रखी गई है, उस तरह से इसमें भी 15 साल की मियाद रख दी जाये। तीसरे अमेंडमेंट का मतलब यह है कि धारा 301(एफ) में उन प्रान्तों के हाई कोर्ट्स को इससे मुस्तसना कर दिया जाये जहां हिन्दी को आफिशियल लैंग्वेज पहले से ही करार दे दिया गया है। मेरे इन तीनों तरमीमों का एक ही मकसद है, और वह यह है कि जहां जिन प्रान्तों में हिन्दी को मान लिया गया है और जिस समय हमारा विधान प्रभावशील होगा उस समय जिस प्रान्त में आफिशियल लैंग्वेज बना दी गई है वहां हिन्दी ही जरूरत रखनी चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि जब हमारा अल्टिमेट आबजेक्ट यह है कि हिन्दी आफिशिल लैंग्वेज रहे तो उन प्रान्तों को जिसमें हिन्दी डेवेलप हो चुकी है उनको फिर यह कहना कि तुम अंग्रेजी में कार्यवाही करो और बाद को हिन्दी में फिर शुरू करना, तो यह तो एक अजीब सी चीज होगी। इसलिये मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर से निवेदन करूंगा कि वह हमारी मुश्किलात पर अच्छी तरह से गौर करें और इस बात को देखें कि दरअसल उन प्रान्तों में जहां हिन्दी अच्छी तरह से डेवेलप हो चुकी है उनको अंग्रेजी सीखने को फिर मजबूर न किया जाये।

यह कहा जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट में जो हाई कोर्ट्स के फैसले जायेंगे, सुप्रीम कोर्ट के जजेज़ के हिन्दी न जानने से उनको कुछ दिक्कत होगी तो उसके लिये मैं निवेदन करूंगा कि उनके लिये ट्रांसलेशन का प्रबन्ध हो सकता है या ज्यादा से ज्यादा यह बात हो सकती है कि हाई कोर्ट्स जजेज़ को कहा जाये कि वह इंग्लिश में जजमेंट लिखें लेकिन सारी प्रोसीडिंग्स इंग्लिश में हो यह ठीक नहीं है। हमारे यहां मध्य भारत में जो धारा सभा का विधान है उसमें धारा सभा की लैंग्वेज हिन्दी रखी गई है। वहां सारी प्रोसीडिंग्स हिन्दी में होती है और तरमीम और प्रस्ताव पेश होते है वह सब हिन्दी में ही होते हैं। फिर इस सबको इंग्लिश में पेश करना शुरू करना व थोड़े समय बाद फिर हिन्दी में करना कहां तक ठीक है और यह एक बेमानी निर्रथक चीज होगी। हमारे यहां हाई कोर्ट का जो विधान हमने बनाया है उसमें हमने वहां हाई कोर्ट की लैंग्वेज हिन्दी रखी

है। फिर मैं नहीं समझता कि इस तरह से हमें इस बात के लिये मजबूर किया जाये कि हम हिन्दी को, जिसको हमने डेवेलप किया है, जिसको हमने सीखा है उसको हम भुला कर अंग्रेजी शुरू करें और अंग्रेजी के बाद फिर हिन्दी में शुरू करें। मैं एक बात खासतौर पर निवेदन करना चाहता हूं कि ग्वालियर में सन् 1901 से हिन्दी की शुरुआत हुई है, उसके बाद सन् 1902 में वहां के तमाम नक्शेजात और जितने स्टेटमेंट्स तैयार होते थे वह सब हिन्दी में तैयार होने लगे। उसके बाद सन् 1919 में वहां को सब कारस्पांडेंस, सिवाय फौरेन और रेजीडेंसी के, हिन्दी में होती थी। अब तो सारी कार्रवाई हिन्दी में ही होने लगी है। इतना ही नहीं इसके बाद जब मध्य भारत यूनियन बनी तो मध्य भारत की बहुत सी रियासतों में अभी तक उर्दू चलती थी, अब वहां भी हिन्दी कर दी गई है। अब फिर उसे अंग्रेजी में शुरू करना वहां तक उचित होगा। इन सब बातों पर खासतौर पर गौर करने की जरूरत है।

अभी शुक्ल जी ने यह फरमाया था कि उन्होंने अपने प्रान्त में ट्रांसलेशन करने के लिये एक कमेटी बनाई है लेकिन उन्होंने उसे अभी कुछ समय से ही बनाया है। लेकिन मैं हाउस की वाकफियत के लिये यह बता देना चाहता हूं कि मध्य भारत में, ग्वालियर स्टेट में, दस साल से कोडिफिकेशन का महकमा मुकर्रर है और उसमें भारत में जितने कानून हैं, जैसे एवीडेंस एक्ट, कांट्रेक्ट एक्ट, क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड, ट्रांसफर ऑफ प्रापर्टी एक्ट वगैरह जितने भी कानून हैं करीब उन सबको ही हिन्दी में ट्रांसलेट कर लिया है और वहां की भाषा भी सरल हिन्दी ही है और वह इतनी अच्छी है कि मैं उसके कुछ कोटेशन्स आपको सुनाता तो आप उसे अवश्य पसन्द करते। पर मैं हाउस का समय नहीं लेना चाहता। जहां हम 50 साल से प्रयत्न कर रहे हैं और जहां हमने दस साल में सब कानूनों को अंग्रेजी से हिन्दी में ट्रांसलेट कर लिया है वहां सारे काम फिर से अंग्रेजी में शुरू नहीं होने चाहियें। अभी मध्य भारत की धारा सभा की तीन बैठकें हुई हैं। उनमें जो 68 बिल पास हुए हैं वे सब हिन्दी में पास हुए हैं। हम यह जरूर करते हैं कि हिन्दी के साथ उसका अंग्रेजी वरशन भी लगा देते हैं, लेकिन मान्यता हिन्दी वरशन को ही दी जाती है न कि अंग्रेजी को। अगर कोई ज्यादा से ज्यादा कैद लगाई जा सकती है तो वह यह है कि हम यूनियन के परपेजेज़ के लिये अंग्रेजी का प्रमाणिक वरशन भी दें, लेकिन यह कहना कि बिल इत्यादि सब अंग्रेजी में ही पास किये जायें यह कोई अच्छी चीज़ नहीं है।

मुझे कुछ सदस्यों से बात करने से यह पता चला कि उनका यह ख्याल है कि अभी हिन्दी इतनी अच्छी तरह डेवेलप नहीं हुई है कि उसमें अच्छी तरह ख्यालात का इजहार किया जा सके। मैं निवेदन करूंगा कि यह ख्याल सही नहीं है। ग्वालियर रियासत में इतना ही नहीं कि हिन्दी को आफिशियल लैंग्वेज 50 साल से बनाया है बल्कि 25 साल से तो रिसाला कानून, यानी ला रिपोर्टर, माहवारी निकल रहा है और उसमें हाई कोर्ट के खास-खास फैसले निकलते हैं। इस रिसाले के अलावा अब दस साल से एक दूसरा ला रिपोर्टर निकल रहा है जिसमें भी हाई कोर्ट के फैसले मासिक निकलते हैं। मैं यह अर्ज करूंगा कि जहां करीब 50 साल से हिन्दी शुरू की गई है और हिन्दी डेवेलप हो गई है, वहां फिर से अंग्रेजी को लाना कोई मुनासिब चीज नहीं होगी।

[श्री राम सहाय]

इस वक्त ज्यादातर कंट्रोवर्सी न्यूमरल्स पर चल रही है। न्यूमरल्स के संबंध में मैं एक बात स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि यह बात कोई अच्छी तो नहीं मालूम देती कि हिन्दी में अंग्रेजी न्यूमरल्स का इस्तेमाल हो, लेकिन आज जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसको मद्देनजर रखते हुए मैं यह मानता हूं कि उनके मान लेने से हमें कोई आपत्ति नहीं करनी चाहिये, और जैसा हमारे साउथ इंडियन मित्र चाहते हैं कि इंटरनेशनल न्यूमरल्स रहें, जो दरअसल में हिन्दुस्तान के ही हैं तो मैं, अध्यक्ष महोदय, हाउस से अपील करूंगा कि उनको मान लेने में कोई आपत्ति करना उचित नहीं, उन्हें स्वीकार ही कर लेना चाहिये। इसलिये मैंने कोई तरमीम न्यूमरल्स के संबंध में नहीं रखी। जहां मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव का, तीसरे चैप्टर को छोड़ कर पूरा समर्थन करता हूं वहां मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि वह अपने प्रोपोजल में कोई ऐसी व्यवस्था रखें जिससे कि जिन प्रान्तों में हिन्दी चालू है और बहुत कुछ डेवेलप हो चुकी है, उसको न हटाया जाये। मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि हमारे यहां की हिन्दी की उन्नति उनको यूनियन की हिन्दी भाषा बनाने में बहुत सहायता करेगी। लेकिन अगर उन्होंने यही चाहा कि नहीं वहां सारी कार्यवाही अंग्रेजी में ही होनी चाहिये तो मैं उनसे कहूंगा कि यह हमें बहुत पीछे ले जाना होगा और उसका नतीजा यह होगा कि हिन्दी अच्छी तरह डेवेलप नहीं हो पायेगी। इसलिये मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस मसले पर अच्छी तरह विचार करके वह कोई ऐसी व्यवस्था अपने प्रोपोजल में करें, चाहे मेरे अमेंडमेंट को स्वीकार करें या किसी और मित्र के अमेंडमेंट को स्वीकार करें, या कोई नया अमेंडमेंट इस आशय का स्वीकार करें, किन्तु ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दें कि जिसमें उन प्रान्तों में जहां कि हिन्दी अच्छी तरह से प्रचलित है और जहां 50 साल से सारी कार्यवाही हिन्दी में हो रही है, सारे कानून हिन्दी में बन चुके हैं, जहां आफिसेज में सारी कार्रवाई हिन्दी में होती है वहां से हिन्दी को न हटाया जाये क्योंकि वहां उसकी प्रोग्रेस को रोकना किसी तरह मुनासिब नहीं होगा।

इसलिये में ज्यादा वक्त न लेते हुए अपनी तरमीम के बारे में यह निवेदन करूंगा कि वह उसे किसी न किसी रूप में मान लें ताकि मेरे तरमीमों का मकसद पूरा हो जाये।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 14 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।